बहुचर्चित कहानियाँ

महावीर उत्तरांचली

रामभक्त शिव जी (1938–2005 ई.)

तूफ़ाँ में पतवार पिताजी
आँधी में दीवार पिताजी
छाँव में उनकी हमसब पनपे
वृक्ष थे छायादार पिताजी

–महावीर उत्तरांचली

बहुचर्चित कहानियाँ

(पत्र-पत्रिकाओं व वेबसाइटस में प्रकाशित)

— कथाकार —

महावीर उत्तरांचली

उत्तरांचली साहित्य संस्थान
बी-४/७९, पर्यटन विहार,
वसुन्धरा एन्क्लेव, दिल्ली –११००९६

USBN 01-2021-003-126

बहुचर्चित कहानियाँ (*Bahucharchit Kahaniyan*)

कॉपीराइट: महावीर उत्तरांचली (*Mahavir Uttranchali*)

आवरण / समर्पण चित्र : सोबन सिंह (*Soban Singh*)

2021 प्रथम संस्करण

प्रकाशक: उत्तरांचली साहित्य संस्थान
बी-४/७९, पर्यटन विहार,
वसुन्धरा एन्क्लेव, दिल्ली –११००९६

कीमत: अनमोल

दो शब्द

मेरी 'बहुचर्चित कहानियाँ' अनेक संकलनों, पत्र-पत्रिकाओं, हिन्दी-उर्दू वेबसाइट्स में यत्र-तत्र सर्वत्र बिखरी पड़ी हैं। जिन्हें सम्पादकों का आशीर्वाद तो मिला ही है। साथ ही पाठकों का भरपूर आशीर्वाद भी मिला है। मुझे ख़ुशी हो रही है कि पहली बार इन्हें एक पुस्तक रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। सुरंजन मेरे कथागुरू थे, जिन्होंने मुझे कथा के क्षेत्र में आगे बढ़ाया। 'तीन पीढ़ियाँ: तीन कथाकार' को उन्होंने सम्पादित किया। जिसमें तीन अलग-अलग पीढ़ियों के तीन कथाकार थे। प्रथम पीढ़ी में सुरंजन जी ने मुंशी प्रेमचन्द जी को रखा था। जो हिन्दी कहानी के पितामह माने जाते हैं। उन्हीं के प्रयासों से तिलिस्म आयरी की दुनिया से निकलकर हिन्दी कहानी ने वास्तविक धरातल पाया। हालाँकि विश्व में प्रेमचन्द के समकालीन ओ हेनरी, चेखव, टालस्टाय, खलील जिब्रान, रविन्द्रनाथ टैगोर, शरतचंद आदि ग़ैर हिन्दी भाषी साहित्यकार उत्कृष्ट कहानियाँ दे रहे थे। कुछ अनुवाद रूप में भी अन्य भाषों में सुलभ थे। हिन्दी में भी उन दिनों अनेक कथाकार जैसे जयशंकर प्रसाद, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, गुलेरी, निराला, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल आदि उत्कृष्ट साहित्यकार मौजूद थे। 'तीन पीढ़ियाँ: तीन कथाकार' में प्रेमचंद जी की 'ये मेरी मातृभूमि नहीं', 'कजाकी', 'बड़े घर की बेटी' और 'कफ़न' को रखा गया था।

'तीन पीढ़ियाँ: तीन कथाकार' की द्वितीय पीढ़ी में सुरंजन जी ने आज़ादी के बाद के सांसे महत्वपूर्ण कथाकार मोहन राकेश को उस किताब में रखा था। इसमें राकेश की 'मलवे का मालिक', 'पाँचवे माले का फ्लैट', 'परमात्मा का कुत्ता' और 'मंदी' नामक उत्कृष्ट कहानियाँ थीं। जिन्हें हिन्दी साहित्य में आज भी महत्वपूर्ण रूप से देखा जाता है। मित्रत्रैयी (मोहन राकेश, राजेंद्र यादव और कमलेश्वर) ने हिन्दी में आधुनिक कहानियों को जन्म दिया।

'तीन पीढ़ियाँ: तीन कथाकार' की तृतीय पीढ़ी में सुरंजन जी ने मुझे जगह दी थी, जिसमें मेरी 'नस्लें', 'मास्टर जी', 'अर्थपुराण' व 'एक श्वान की व्यथा' को स्थान दिया था। अनेक साहित्यकारों ने इसे सराहा था तो अनेक साहित्यकारों ने इसकी आलोचना भी की थी। ख़ैर सुरंजन जी इस किताब के अन्य भाग भी लाना चाहते थे। ऐसा हो नहीं सका। बाद में 'तीन पीढ़ियाँ: तीन कथाकार' की कहानियों पर ही "कथा संसार" (त्रैमासिक पत्रिका) का एक विशेषांक उन्होंने निकला था। आज भी हिन्दी की कई वेबसाइटस पर मेरी कहानियों पर पाठकों की टिप्पणी, प्रतिक्रिया मुझे नया सृजन करने के लिए प्रेरणा देती है। जब तक साँस हैं, तब तक कुछ और सार्थक कालजयी सृजन कर सकूं ऐसा माँ सरस्वती से ख़ाकसार का निवेदन है।

महावीर उत्तरांचली
28 जून 2021 ई.

विषय सूची

माँ	1
अर्थपुराण	8
मास्टर जी: एक अनकही प्रेमकथा	24
एक श्वान की व्यथा	43
तिलचट्टे	49
मुश्किल समय	53
नई परिभाषा	57
गंगा का फोन	61
कद्रदान	68
जीतनराम: एक दुःखद स्मृति	71
मुलाकात	81
घरखर्च	85
अंत भला तो सब भला	88
संघर्ष	98
टुकड़ा टुकड़ा यादें	102
नस्लें	111

•••

महान कथाशिल्पी प्रेमचंद व
मोहन राकेश जी को समर्पित,
जिनकी कहानियाँ हमें आगे बढ़ने
और कुछ नया रचने को प्रेरित करती हैं।

और

साहित्य गुरू व पथप्रदर्शक
सुरंजन जी तथा रमेश प्रसून जी को सादर।

माँ

"सूरा — ४० अल-मोमिन,' पवित्र करआन को माथे से लगाते हुए उस्ताद अख़लाक़ ने कहा, 'शुरू नामे-अल्लाह से। जो बड़ा ही मेहरबान और निहायत ही रहम करने वाला है। यह पवित्र कुरआन उतारी गई है, अल्लाह की तरफ से। जो जबरदस्त है। वह जानने वाला है। वह माफ़ करने वाला और तौबा क़ुबुल करने वाला है। वह सख़्त सज़ा देने वाला, बड़ी कुदरत वाला है। उसके सिवा कोई मा'बूद नहीं। अन्ततः उसी की तरफ हमें लौटना है।"

सभी बच्चे बड़े ध्यान से सुन रहे हैं। अख़लाक़ बड़े ही खूबसूरत ढंग से पवित्र कुरआन की तालीम अनाथ बच्चों को दे रहे हैं। कुछ बच्चे जिन्होंने पिछला सबक़ याद नहीं किया था। कक्ष से बाहर खड़े होकर अगला सबक़ सुन रहे हैं।

"अख़लाक़ साहब, ज़रा घड़ी की जानिब देखिए। आपकी शाम की चाय का और बच्चों के खेल-कूद का वक़्त हो गया है।" कक्ष के दरवाज़े पर खड़ी अनाथालय की 'आया' सबीना ने कहा। खेल-कूद का नाम सुनकर बच्चे ख़ुश हो गए। ख़ुशी का एक सम्मिलित शोर पूरे अध्ययन कक्ष में गूंज उठा। सबीना और अख़लाक़ ने चेहरे पर बच्चों द्वारा मचाए गए शोर की ऐसी प्रतिक्रिया हुई जैसे उस शोर में दोनों ने अपने बचपन को याद किया हो। सभी बच्चे तुरंत बाहर की तरफ खेलने के लिए दौड़ पड़े।

अमेरिकी बमबारी में अनाथ हुए एक मुस्लिम राष्ट्र के बच्चे शहर के लगभग वीरान से पड़े यतीमखाने को अपने खेल-कूद और शोर-शराबे से आबाद कर रहे हैं। पहले मात्र बारह बच्चे थे। अब हाल ही में यतीम हुए बच्चों को मिलकर चौवन बच्चे यतीमखाने को रोशन कर रहे हैं। छह-सात बरस की नन्ही फ़ातिमा भी उन बदक़िस्मत बच्चों में से एक है। जो अभी हाल ही में अनाथ हुए हैं। दो दिन में ही नए बच्चे अनाथालय के पुराने बच्चों के साथ इतना घुल-मिल गए हैं कि खूब खेल-कूद कर धमाचौकड़ी मचाने लगे हैं। अनाथालय में पुनः रौनक लौट आई है।

“अब तो काफ़ी ठाट हो गए हैं तुम्हारे हमीदा" अख़लाक़ ने चाय का घूंट हलक से नीचे उतारने के उपरान्त कहा।

"ख़ाक ठाट हुए हैं।" हमीदा खातून जो यतीम खाने की इंचार्ज है, अपनी नाक-भौ सिकोडते हुए बोली, "बच्चों ने नाक में दम कर रखा है। जब से नए बच्चे आए हैं। तबसे अपने लिए नहाने-धोने की भी फ़ुर्सत नहीं मिलती। सुन रहे हो न, अभी भी कैसा शोर-शराबा जारी है शैतानों का! पढाई-लिखाई में मन लगाते नहीं! सारा दिन खेल-कूद कर ऊधम मचाते रहते हैं। मेरा बस चले तो सबको पीट-पीट कर ठीक कर दूं।" हमीदा ने माथा पकड़ते हुए कहना जारी रखा। हमीदा सख़्त मिज़ाज औरत है जिससे यतीमखाने के पुराने बच्चे तो ख़ौफ़ खाते हैं, मगर नए बच्चों को अभी इसका अहसास नहीं है। क्योंकि नए बच्चों को अभी तक कोई सज़ा नहीं मिली है।

सूर्यास्त का वक़्त है। प्रतिदिन की भांति बच्चे अनाथालय परिसर में बॉल से खेल रहे हैं। परिसर के एक छोर पर ही बगीचे के बीच अनाथालय के कर्मचारी गपशप के साथ शाम की चाय का लुत्फ़ उठा रहे हैं। मौजूदा अनाथालय सरकारी सहायता प्राप्त है। पहले यह किसी पुराने रईस व्यक्ति की हवादार दो मंज़िला हवेली हुआ करती थी। अब हलकी-सी तबदीली यह हुई है कि पहले इसे अल्ताफ़ हाउस कहा जाता था जबकि आजकल इसकी पहचान अल्ताफ़ यतीमखाना के रूप में होती है।

"बच्चो थोड़ा आगे खेलो। कांच की खिड़कियां हैं। कुछ टूट-फूट न हो जाए।" सबीना जो बच्चों हमदर्द है और अनाथालय में आया का काम करती है, बड़ी रहम दिल, पाक और नेक औरत है। वह बच्चों के दुःख से द्रवित होती है और सुख से खुश। उसने खेलते हुए बच्चों को हिदायत दी मगर बच्चों पर उसके कहने का कुछ असर न हुआ। वह पूर्ववत वहीं खेलते रहे।

"ये साले अमेरिकी, क्यों हमारे मामलों में टाँग अड़ाते हैं। कितने घर बर्बाद कर दिए इन कमीनों ने। कितने लोग वक़्त से पहले भरी जवानी में कब्र में सुला दिए गए हैं। कितने बच्चे यतीम हो गए हैं?" अख़लाक़ के बगल में बैठे सज्जाद भाई ने बड़े ही गुस्से में भरकर कहा। सज्जाद भाई का दर्द वक़्त-बेवक़्त यकायक फूट पड़ता है। कभी भी, कहीं भी। यह बात यतीमखाने के सभी लोग जानते हैं।

"यह सब अपने-अपने आर्थिक संघर्षों की लड़ाई है। विदेशों में अपना बाज़ार और बादशाहत कायम करने की कोशिश है।" अख़लाक़ ने सुलझे हुए ढंग से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की और चाय का घूंट पुनः हलक से नीचे उतार दिया।

"ये अमेरिकी कभी अपने मंसूबों में कामयाब न हो सकेंगे। भाईजान, अगर हमारी अरब कम्यूनिटी यूँ ही कामयाब रही तो इंशा अल्लाह ताला, ये कभी हमारे तेल के कुँओं पर अपना क़ब्ज़ा नहीं कर सकेंगे।" सज्जाद का आतिशी स्वर अब भी बुलंद था।

"छोड़ो यार ये सब। क्यों शाम की चाय का लुत्फ़ ख़राब कर रहे हो?" अख़लाक़ ने सज्जाद को शांत करने के उद्देश्य से कहा।

“बिलकुल ठीक कह रहे हैं अख़लाक़ साहब आप! सज्जाद साहब तो हमेशा आतिश मिज़ाज बने रहते हैं।" हमीदा ने भी अख़लाक़ की बात का समर्थन किया। तत्पश्चात चाय का एक घूंट पीकर कप को पुनः मेज़ पर रख दिया। हमीदा हमेशा अपने स्वभाव अनुरूप धीरे-धीरे ही चाय पीती है। चाय का हर नया घूंट, पहले की अपेक्षा कुछ ठंडा ।

"देखो सामने बाग में कितने सुन्दर फूल खिले हैं! यूँ लगता है जैसे कुदरत ने अरबी में कुरआन की आयतें लिखीं हैं।" अख़लाक़ ने बड़े ही रोमानियत भरे अंदाज़ में कहा। हमीदा और सबीना खिलखिलाकर हंस पड़ी।

"आप दोनों की हंसी, मौसम को और भी ख़ुशनुमा बना रही है। इस मौक़े पर एक शायर ने क्या खूब कहा है—'या तो दीवाना क्या हँसे, या वो (ख़ुदा) जिसे तौफ़ीक़ दे। वरना दुनिया में आके मुस्कुराता कौन है?" अख़लाक़ ने बडे ही खूबसूरत अंदाज़ में शेर कहा।

"बिलकुल मैं सौ फ़ीसदी आपकी बात से इत्तेफाक रखता हूँ अख़लाक़ भाई जान। ऐसे मौसम में तो कोई दीवाना ही हंस सकता है।" और सज्जाद ने अपनी बात कहकर बड़े ही ज़ोरदार ढंग से ठहाका लगाया।

"आपका मतलब क्या है सज्जाद साहब! हम दोनों पागल हैं क्या?" हमीदा ने अपने और सबीना की तरफ से सवाल पूछा।

"अख़लाक़ साहब के शेर का मतलब तो यही बैठता है।" सज्जाद साहब ने अपनी चाय का कप उठती हुए कहा और मजे से चाय की चुस्कियां लेने लगे। हमीदा जल-भुन गई।

"अरे भई, तुम इतनी सीरियस क्यों हो गई! सज्जाद साहब तो मज़ाक कर रहे हैं।" अख़लाक़ ने हँसते हुए कहा।

गपशप जारी थी। तभी एक दुर्घटना घट गई. बगल में खेलते हुए बच्चों की बॉल अचानक मेज़ पर आ गिरीबॉल का टप्पा किनारा लेते हुए हमीदा के चाय के कप से टकराया और कप धड़ाम से ज़मीं पर गिरकर फूट गया। चाय के छींटे हमीदा के कपड़ों को ख़राब कर गए. अब हमीदा का चेहरा गुस्से से तमतमा उठा। सारे बच्चे डरके मरे सहमे से खड़े हो गए।

"किसने फेंकी थी बॉल?" हमीदा गुस्से से चिल्लाई।

"फ़ा... फ़ातिमा ने।" कांपते हुए लड़खड़ाते हुए एक बच्चा बोला।

"ऐ लड़की इधर आ। ज़्यादा चर्बी चढ़ गई है तुझे। यतीम खाने में आए हुए जुम्मा-जुम्मा दो दिन भी नहीं हुए और ऐसी गुस्ताख़ी?" हमीदा ने लड़की को पास बुलाया।

"जाने भी दो न, बच्ची है। ग़लती हो गई।" सबीना ने फ़ातिमा का बचाव करते हुए कहा।

"सबीना तू 'आया' है। इंचार्ज बनने की कोशिश मत कर। अगर मैं आज इस बच्ची को कठोर सज़ा नहीं दूंगी, तो ये सारे नए बच्चे मेरे सर पर चढ़ जाएंगे।" हमीदा ने एक ज़ोरदार थप्पड़ नन्ही-सी जान फ़ातिमा के गाल पर जड़ा। बेचारी छिटक कर दो हाथ दूर ज़मीं पर जा गिरी, "सबीना इसे ले जा और अँधेरी कोठरी में डाल दे और ख़बरदार जो इसे खाना दिया तो।"

अख़लाक़ और सज्जाद, हमीदा के ग़ुस्से को जानते थे। इसलिए ख़ामोश खड़े रहे। हमीदा अक्सर बच्चों को कठोर यातनाएं देती थी। पुराने बच्चे अकेले में उसे लेडी सद्दाम हुसैन कहकर पुकारते थे। अली ने वहीं अपनी पैन्ट में पेशाब कर दिया क्योंकि उसे वह दिन याद आ गया। जब सज़ा के तौर पर, उसे जेठ की कठोर धूप में दिनभर खड़ा था। चक्कर खाकर बेहोश होने के बाद उसे होश में आने और नार्मल होने में पूरा एक दिन लगा था। अली के बगल में खड़े रहमत की आँखों में घंटे भर मुर्गा बनाए रखने का दृश्य ताज़ा हो गया। तीन-चार दिनों तक उसकी जांघों की मासपेशियों में खिंचाव रहा था जिनमें होने वाली असहनीय पीड़ा को वह अब भी नहीं भूला था। दुबले-पतले आलम को यतीमखाने के दस चक्कर लगाना याद आ गया। बाक़ी बच्चों को भी समय-

समय पर हमीदा द्वारा बरसाए गए डंडे, थप्पड़, घूंसे आने लगे। इराकी राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन की यातनाओं के क़िस्से बच्चों ने सुने हुए थे। कैसे अपने विरोधियों को सद्दाम ने बर्बर यातनाएं देकर बेरहमी से मौत के घाट उतरता था? कइयों को भूखे शेरों के आगे फेंक देना। चाकुओं से ज़ख़्मी तड़पते व्यक्ति को नमक लगाकर तड़पाना। अपनी बंदूक और तलवार से एक बार में शत्रुओं का काम ख़त्म कर देना उसके लिए आम बात थी। बच्चे रात को सोते वक़्त हमीदा की तुलना सद्दाम हुसैन से करने लगे थे। गुपचुप रूप से वह उसे लेडी सद्दाम हुसैन कहने से नहीं चूकते थे।

"फ़ातिमा आज लेडी सद्दाम के हाथों मारी जाएगी! बोल लगी शर्त!" बहुत ही धीमे स्वर में अली बुदबुदाया।

“अबे साले मरवाएगा क्या? साली के कान बहुत तेज़ हैं! सुन लेगी तो तेरा भी जनाज़ा साथ ही उठाना पड़ेगा।" रहमत मियां ने अली को अपने तरीक़े से टोका।

"साले, जब फ़ातिमा को थप्पड़ पड़ा था तो मेरा पेशाब पैंट में ही निकल गया था।" अली ने अपनी कमीज पैंट से बाहर निकाल ली थी ताकि किसी को गीली पैंट दिखाई न दे।

"साले, तू तो जन्मजात फट्टू है" रहमत धीमे से हँसते हुए बोला।

"तू कौन-सा शेर दिल है? तुझे भी तो घंटा भर मुर्गा बनाया था। बस हलाल होना बाक़ी था उस दिन।" अली ने व्यंग्य कसा।

"ये पीछे क्या खुसुर-फुसुर लगा रखी है?" अचानक हमीदा फ़ातिमा से ध्यान हटकर और बच्चों की तरफ देखकर बोली।

"कुछ नहीं मैडम जी।" रहमत ने बड़ी मुश्किल से अपना थूक हलक से नीचे गटकते हुए कहा "तुम सब बच्चे खड़े-खड़े क्या देख रहे हो। जाओ पाक कुरआन का अगला सबक याद करो। जिसे सबक़ याद नहीं हुआ, उसे खाना भी नहीं मिलेगा। समझे।" शेरनी ने अगला नादरी फ़रमान सुना दिया

शुक्र है फ़ातिमा को एक थप्पड़ लगाकर सिर्फ अँधेरी कोठरी में एक रात भूखे रहने की सज़ा मिली है। वहाँ उपस्थित लोगों ने मन-ही-मन राहत की साँस ली। आदेशानुसार सबीना फ़ातिमा को जल्द से जल्द घटनास्थल से दूर ले गई। कहीं हमीदा का इरादा बदल न जाए और वह कोई दूसरी कठोर सज़ा बेचारी फ़ातिमा को न दे दे। बाक़ी बच्चे भी अध्ययन कक्ष की तरफ बिना एक भी क्षण गंवाए बढ़ गए।

ooo

अँधेरे कमरे में मात्र एक ज़ीरो वॉट का बल्ब अपना धुंधला प्रकाश फैलाए कोठरी में व्याप्त अन्धकार से संघर्ष करता जान पड़ रहा था। एकांत में फ़ातिमा को अजीब-सा डर सताने लगा। वह अपने हाथ-पैरों को एक कोने में सिकोड़कर बैठ गई। अपने माँ-बाप की स्मृति उसके जेहन में ताज़ा थी। उसे जब कभी डर लगता था तो अपनी माँ को कसकर पकड़ लेती थी या उनकी गोद में जाकर चिपक कर सो जाती थी। उसकी माँ उसके सर को सहलाती थी और उसे 'अल्लाह' का नाम लेने को कहती जिससे उसका डर भाग जाया करता था। 'कहाँ चली गई तुम माँ, लौट आओ मेरी प्यारी माँ।' कहकर फ़ातिमा की आँखों में अश्कों की दो बंदें तैर गई।

“अल्लाह-अल्लाह" कोने में हाथ-पैरों को सिकोड़कर बैठी फ़ातिमा इस तरह अपने भीतर के डर पर विजय पाने का प्रयास करने लगी। न जाने कितनी देर वह यूँ ही बैठी 'अल्लाह-अल्लाह' दोहराती रही। एकाएक उसे अहसास हुआ फ्रॉक की जेब में कुछ पड़ा है। हाथ डाला तो उसके हाथ में एक चाकलेट और चॉक का टुकड़ा था। उसे दिन की घटनाएँ याद आ गईं।

"शाबास फ़ातिमा, तुमने बहुत अच्छे से अपना सबक़ याद किया। तुम्हारा तरन्नुम अच्छा है। एक बार फिर से सुना दो।" अख़लाक़ सर के कहने पर फ़ातिमा ने फिर से गाया। पूरी क्लास मंत्रमुग्ध होकर सुन रही थी।

"लो यह चॉकलेट।" अख़लाक़ ने इनाम के तौर पर फ़ातिमा को एक चॉकलेट दी। फ़ातिमा अपनी सीट पर जाकर बैठ गई।

"तुम लोग अपना सबक याद करो, मैं अभी आता हूँ।" कहकर अख़लाक़ क्लास से बाहर चले गए।

फ़ातिमा को पीठ पर कुछ लगा। उसने मुड़कर देखा तो पता चला। चॉक का एक टुकड़ा रेशमा ने मारा था।

“क्या है री?" फ़ातिमा ने चॉक का वह टुकड़ा अपनी जेब में डालते हुए रेशमा से पूछा।

"अकेले-अकेले ही खाओगी चॉकलेट।" रेशमा ने बड़ी-बड़ी आँखें करके सर हिलाते हुए कहा।

"तू भी खा लेना मगर स्कूल ख़त्म होने के बाद।" फ़ातिमा मुस्कुराते हुए बोली, "अभी अपना सबक याद करो।"

अँधेरी कोठरी में वह चॉकलेट का रैपर फाड़कर चॉकलेट खाने लगी। खाने की आवाज़ परे वातावरण में गूंज रही थी। काफ़ी हद तक अब फ़ातिमा ने अपने डर पर काबू कर लिया था।

उसने चॉक से फ़र्श पर आड़ी-टेडी रेखाएं खींचनी शुरू की। पहले एक बिल्ली का चित्र बनाया। जो उसे अच्छा नहीं लगा तो मिटा दिया। फिर उसने सोचा क्यों न अपनी माँ की तस्वीर बनाऊँ। चॉक से बनी रेखाओं से वह अपनी माँ की छवि तो नहीं बना पाई मगर स्त्री की आड़ी-टेडी रेखाओं को मिलाने के बाद अंत में सबसे नीचे उसने अरबी भाषा में 'माँ' लिखा। इससे उसने अपनी माँ के होने के अहसास को चित्र में महसूस किया। चित्र इतना बड़ा था कि गोद वाले हिस्से में फ़ातिमा खुद सिमट गई। नन्ही बच्ची के लिए यही अहसास काफ़ी था कि वह अपनी स्वर्गवासी माँ की गोद में सोई है।

उसकी नन्ही स्मृतियों में अतीत के कई खुशनुमा पल तैरने लगे। तितलियों के पीछे पीछे दौड़ती नन्ही फ़ातिमा। माँ की गोद में खेलती नन्ही फ़ातिमा। पिता के कंधे पर झूलती नन्ही फ़ातिमा। टॉफी, चॉकलेट, बिस्कुट के लिए ज़िद करती नन्ही फ़ातिमा। कभी ढेरों टॉफियों, चॉकलेटों और बिस्कुटों के मध्य गुड्डे-गुड़ियों से खेलती नन्ही फ़ातिमा। तभी अचानक घर के बाहर एक धमाका! खिलौने छोड़कर खिड़की से बाहर झांकती! चौंकती! नन्ही फ़ातिमा!! बाहर चारों तरफ आग, अफ़रा-तफ़री, लोगों के चिल्लाने की आवाज़ें। यहाँ-वहां मरे हुए—लोग ही लोग! ज़ख्मी और तड़पते—लोग ही लोग! सड़क पर यत्र-तत्र बिखरा हुआ—खून ही खून! मांस-मांस के लोथड़े ही लोथड़े। यह सब देखकर गुमसुम–बेबस पड़ी—नन्ही फ़ातिमा! उस धमाके के बाद बाज़ार से कभी न लौटे अम्मी-अब्बू की राह तकती नन्ही फ़ातिमा! कई रोज़ अम्मी-अब्बू की राह तकती

नन्ही फ़ातिमा! जिन्हें सोचकर, यादकर कई दिनों तक बिलखती नन्ही फ़ातिमा! बाक़ी अनाथ बच्चों के साथ अपने-अपने अम्मी-अब्बू को तलाशती कई मासूम आँखों के बीच नन्ही फ़ातिमा।

ooo

रोज़ की तरह रसोइया महमूद भोजन कक्ष में सब बच्चों की प्लेटों में भोजन परोसने के बाद अपने कर्कश स्वर में बच्चों को भोजन के लिए पुकार रहा था। सब बच्चे आए भी मगर एक ने भी भोजन ग्रहण नहीं किया। न जाने क्या बात थी?

कुछ देर उपरांत हमीदा जब हाथ-मुंह धोकर भोजन के लिए कक्ष में आई, तब भी बच्चों का यही रवैया था। खाने पर रोज़ गिद्ध की तरह टूट पड़ने वाले बच्चे, आज खाने के सामने खड़े होकर भी उसे छू नहीं रहे थे।

"क्या हुआ बच्चों? खाना क्यों नहीं खा रहे आप सब।" हमीदा ने तेज़ स्वर में पूछा।

"इंचार्ज साहिबा, बच्चों की माँग है-जब तक फ़ातिमा न खाएगी, एक भी बच्चा खाना नहीं खाएगा।" रसोइया महमूद अपने कर्कश स्वर में बोला।

"अख़लाक़ सर नहीं दिखाई दे रहे हैं!" हमीदा ने भोजन की मेज़ पर अपने बग़ल में खड़ी सबीना से पूछा।

“मैंने कई बार कहा मगर उन्होंने हर बार यह कहकर टाल दिया कि उन्हें भूख नहीं है।" सबीना ने दुखी स्वर में कहा।

"ठीक है तुम सब खाओ या भूखे मरो। इससे मुझे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। मुझे तो जोरों से भूख लगी है। मैं तो खूब जम कर खाऊँगी।" हमीदा ने सामने रखी थाली से रोटी का एक कोर तोड़ते हुए कहा।

"हाँ इंचार्ज साहिबा, एकदम सही बात। इन सबको भूखा मरने दो। सबकी अक्ल ठिकाने आ जाएगी जब रात को पेट में चूहे दौड़ेंगे।" रसोइए महमूद ने फिर अपने कर्कश स्वर में कहा। वह दाँत फाड़े हंस दिया। भद्दी कर्कश हंसी।

"तुमने खाना परोस दिया।" हमीदा ने महमूद से बड़ी सख़्ती से पूछा।

"जी।" अपनी हंसी पर विराम लगते हुए कर्कश स्वर में महमूद ने जवाब दिया।

"तो फिर यहाँ क्या कर रहे हो? चुपचाप रसोई में जाओ।" हमीदा ने महमूद से उसी सख़्त लहज़े में कहा। वह गर्दन झुकाए रसोई में चला गया। हमीदा ने रोटी का कोर सब्ज़ी में डुबोया मगर उसे वह मुंह तक न ले जा सकी।

"एक बात कहूँ!" सबीना ने हमीदा से अपने मन की बात कहनी चाही।

"क्या?" रोटी का कोर थाली में वापिस रखते हुए हमीदा बोली।

"फ़ातिमा को माफ़ कर दो। उस नन्ही-सी जान को अँधेरी कोठरी में डालकर आपने अच्छा नहीं किया। शायद यही वजह है कि अख़लाक़ सर ने भोजन नहीं किया।" सबीना ने अपनी निजी राय राखी, “आज ही सुबह अख़लाक़ सर ने इनाम के तौर पर फ़ातिमा को चॉकलेट दी थी।"

"किसलिए?" हमीदा के चेहरे पर वही सख़्ती थी।

"फ़ातिमा ने अपने तरन्नुम से सबका दिल छू लिया था। इतनी कम उम्र में इतने अच्छे ढंग से गाकर उसने अपना सबक़ सुनाया था कि इनाम स्वरूप उसे सर ने चॉकलेट दी और आज ही आपने

सज़ा के तौर पर उस नन्ही जान को काल कोठरी में डाल दिया है। शायद यही वजह है तमाम बच्चों की तरह अख़लाक़ सर ने भी भोजन नहीं किया है।"

"और सज्जाद।" हमीदा ने पूछा

"उन्होंने भी न खाने का फ़ैसला किया है। वह अध्ययन कक्ष में ज़ोर-ज़ोर से कुरआन पढ़ रहे हैं।" सबीना ने भरे मन से कहा। हमीदा जानती है—जब सज्जाद का मन भरी पीड़ा और विषाद से भर जाता है, तब वह तेज़–तेज़ स्वर में पवित्र कुरआन पढ़कर अपने दर्द को कम करते हैं।

"चलो अंधेरी कोठरी की तरफ, फ़ातिमा को ले आएं।" हमीदा ने नरम भाव से कहा। सबीना की खुशी का ठिकाना नहीं था।

ooo

अँधेरी कोठरी की मेन लाइट ऑन की तो फ़ातिमा चॉक से बनाई अपनी माँ की छवि के बीचों-बीच बड़े आराम से चैन की नींद सो रही थी। मानो जन्नत में कोई नन्ही परी सोई हो। सबीना और फ़ातिमा को ऐसा महसूस हुआ कि फ़ातिमा वाकई में अपनी मरहूम माँ की गोद में सोई हुई है। हमीदा ने अपने मोबाइल फ़ोन पर वह खूबसूरत नज़ारा क़ैद कर लिया

"वो देखो, इन्चार्ज साहिबा, बच्ची ने चित्र के नीचे 'माँ' लिखा है।" सबीना ने अति भाव विभोर स्वर में कहा। उसकी आँखों में आँसू छलछला आए।

"जल्दी दरवाज़ा खोलो सबीना।" हमीदा को अपनी कठोरता का पहली बार अहसास हुआ। उसका हृदय अपराध बोध से घिर गया। फ़ातिमा के प्रति उसके हृदय में असीम संवेदना उभर आई। "अल्लाह! मुझे माफ़ करना।" हमीदा ने अपने गुनाह की माफ़ी मांगते हुए कहा, "आज से मैं किसी भी बच्चे पर सख़्ती नहीं करूंगी।" हलचल होने से फ़ातिमा की नींद टूट गई थी। वह उठ खड़ी हुई। सबीना और हमीदा, फ़ातिमा के सामने खड़े थे।

"आ जाओ मेरी बच्ची।" रुंधे हुए गले से भर्राए स्वर में हमीदा ने कहा। उसकी ममतामयी दोनों बाहें फ़ातिमा की तरफ फैल गई थीं।

"माँ।" कहकर नन्ही फ़ातिमा हमीदा से लिपट गई। बच्ची भी काफ़ी लम्बे अरसे से माँ के प्यार की भूखी थी।

"हाँ, मेरी बच्ची। आज से मैं ही तेरी माँ हूँ। तू हमेशा मेरे ही साथ रहेगी।" बरसों से सोई हुई ममता जगी तो हमीदा के भीतर की लेडी सद्दाम हुसैन अपने आप मर गई। बग़ल में खड़ी सबीना यह दृश्य देखकर भाव-विभोर थी। वह बस रुमाल से अपने आंसुओं को पोंछने में व्यस्त थी।

●●●

अर्थपुराण

"कहाँ घुसा जा रहा है कंजर? आँखें फूट गई हैं क्या?" पोछा लगाते हुए झबरी के हाथ रुक गए।

"कमबख़्त शक्ल अच्छी नहीं दी भगवान ने, कम-से-कम बातें तो अच्छी किया कर।" मणीराम झल्लाया।

"तू सिखाएगा मुझे तमीज़, नामर्द कहीं का....!" झबरी गुस्से से पोछे को बाल्टी में पटकते हुए चिल्लाई।

"तेरे मायके वालों को तमीज़ है?" कहकर चप्पल वहीं छोड़ मणीराम कमरे में प्रवेश कर गया।

"मेरे तो भाग फूट गए इस मरदूद से ब्याह करके।" बड़बड़ाते हुए झबरी पुनः पोछा लगाने लगी।

ये कोई नई बात न थी। आये दिन दोनों पति-पत्नी के मध्य इस तरह की नोक-झोंक होती रहती थी। ब्याह का सुख इस सात वर्ष में बासी रोटी की तरह रुखा और बेस्वाद हो चला था। ऐसा नहीं था कि मणीराम कोई तज़ुर्बेकार आदमी नहीं था। झबरी उसकी तीसरी लुगाई थी। पहली दो आर्थिक तंगी के चलते ही भागी थी मगर जीवन के अर्थशास्त्र का गणित मणीराम की समझ से परे था। ऐसा अक्सर होता है कि कर्म का उचित पारितोषिक न मिलने पर, व्यक्ति विशेष के मन में अकर्मण्यता घर कर जाती है। निर्धनता और तिस पर लक्ष्मी जी की अधिकतम रुष्टता ने मणीराम को भी कर्महीनता के पथ पर धकेल दिया था।

झबरी भले ही मुंहफट थी मगर हृदय से सरल स्वभाव की, चरित्रवान-धर्मकर्म वाली महिला थी। भले ही वह अधिक सुन्दर न थी, मगर इतनी कुरूप भी न थी कि देखने वाले को अपनी

तरफ़ आकर्षित न कर सके। यदि परिवार की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती तो उस जैसी कोई आदर्श पत्नी न थी। निर्धनता और अभावों ने उसे क्रोधी स्वाभाव का बना दिया था। पता नहीं, वह सुनने वाले पर भड़ास निकालती थी या अपनी फूटी तक़दीर पर उसे क्रोध आता था। इन सात बरसों में तीन बच्चों की माँ बन जाने से भी उसका स्वास्थ्य और सौंदर्य प्रभावित हुआ था। बड़ा बेटा गुणीराम, मंझला चेतराम और छोटा धनीराम — छह, चार और डेढ़ वर्ष के ही थे कि चौथा जीव भी पेट में अंगड़ाई लेने लगा था। परिवार बढ़े या घटे, इससे मणीराम को क्या? फ़क़ीरी में भी वह इन सब पचड़ों से आज़ाद था। घर में बच्चों के साथ सारा दिन झबरी ही खटती रहती थी। शादी के क़रीब तीन-चार बरस के बाद जाके कहीं एक अच्छी-सी प्राइवेट कंपनी में जमादार की नौकरी मिली थी मणीराम को, किन्तु अब इस नौकरी के भी छूट जाने का भय बना हुआ था क्योंकि नशाखोरी के चलते मणीराम की पहले भी कई नौकरियां छूट चुकी थीं।

नशा भी बाप-रे-बाप! पान-तम्बाकू, बीड़ी-सिगरेट की क्या औकात? भांग-चरस, अफ़ीम-गांजा, शराब ... जो भी मुफ़्त में मिल जाए मणीराम खाने-पीने से नहीं चूकता था। मुहल्ले के यार-दोस्तों से लेकर दफ़्तर तक के सभी मित्रगण उसे नशा करने और करवाने में सहयोग देते थे। अतः जेब में पैसा हो या न हो मणीराम की सेहत पर कभी कोई फ़र्क़ न पड़ता था। भांग-अफ़ीम-चरस तो उसके पसन्दीदा नशों में एक थे, मगर महंगे होने की वजह से कभी-कभार ही इनके दर्शन होते थे। अलबत्ता, देसी शराब पीकर ही मणीराम का काम चल रहा था। कभी-कभार उसे अपना मनपसंद नशा मिल जाता तो वह इतना कर लेता था कि यदि कोई दूसरा खा-पी ले तो फ़ौरन स्वर्गयात्रा हो जाये, मगर इस जीव पर उस नशे का कोई ख़ास असर न रहता। हद-से-हद वह दो-चार दिन तक दीन-दुनिया से बेख़बर रहता। दारू भी यदि मुफ़्त की मिल जाती, तो इतनी चढ़ा लेता था कि रात किस गटर या नाले में गुज़रेगी? इसका पता मणीराम को भी नशा टूटने पर ही चलता। कुल मिला के कहना ये, कि तंगहाली में भी बरबादी के सौ सामान। दूसरे खाएं या फाके करें, इससे मणीराम को न तो कोई सरोकार था, और न है।

ooo

"ई स्साला भी कोनो ज़िन्दगी है? कोई सुख नहीं। ससुरी झबरी ने तो धोबी का कुकुर बनाये दिया।" साइकिल चलाते हुए मणीराम मन-ही-मन बड़बड़ाया।

टूटी-फूटी खटारा साइकिल को पैदल मारते ... घर से दफ़्तर... दफ़्तर से घर... यही ज़िन्दगी होकर रह गई थी मणीराम की। दो वर्षों में ही नई साइकिल ऐसी नज़र आने लगी थी जैसे बाबा आदम के ज़माने में ख़रीदी गई हो। कोई भी पुर्ज़ा अब तक बदला नहीं गया क्योंकि सवार की जेब में पैसा बचे तो मरम्मत हो। वैसे इस वक्त रिपेरिंग की ज़रूरत साइकिल को ही नहीं मणीराम को भी थी। आज पूरे दो दिन होने को आये थे उसे नशा किये! और इस हालत में मणीराम के पेच-पुर्ज़े भी ढ़ंग से काम नहीं कर रहे थे। जी में बेचैनी और घबराहट-सी महसूस कर रहा था वह। जैसे-तैसे बेसुरी बांसुरी की तरह बज रही थी, साइकिल और साइकिल सवार की ज़िन्दगी।

"सत्यनाश!" फुस के साथ जैसे ही अगले टायर की हवा निकली मणीराम के मुंह से सहसा निकला, "हो गई पेंचर ससुरी, चलो, शुक्र है दो क़दम पर ही किसनवा की दुकान है।"

"और किसनवा का हाल है?" दुकान पर पहुँचते ही साइकिल खड़ी करके मणीराम बोला।
"ठीक हैं मणीराम सेठ, तुम सुनाओ।" किसी अन्य ग्राहक की साइकिल ठीक करते हुए किसनवा बोला।

"देख किसनवा हज़ार दफ़ा कह चुके हैं, सौ जूता मार लो ससुर, पर सेठ-साहूकार कहके गाली मत दिया करो।" मणीराम की बात सुनकर किसनवा और उसके बगल में खड़ा अन्य व्यक्ति दोनों हंस पड़े।

"नहीं कहूंगा सरकार! कहिये कैसे ज़हमत उठाई?" किसनवा हँसते हुए ही बोला, "कहीं फिर पेंचर तो नहीं हो गया?"

"तुम्हारी दुकान में कोई भजन-कीर्तन करने तो आएगा नहीं।" मणीराम चिढ़ गया।

"आपसे कई दफ़ा कह चुका हूँ हज़ूर, टायर-ट्यूब चेंज़ क्यों नहीं करवा लेते?" मणीराम की साइकिल पर एक नज़र डालते हुए किसनवा बोला।

"क्यों क्या ख़राबी है?" मणीराम ने अकड़ कर पूछा।

"लो कर लो बात।" साथ खड़े दूसरे ग्राहक की तरफ़ आँखें मटकाते हुए किसनवा बोला, "दस तो टुकड़े डलवा रखे हैं टायर में... फिर ट्यूब भी माशा अल्लाह, हर दूसरे-चौथे दिन में पेंचर हो जाती है, और इस पर ये हज़रत पूछ रहे हैं की ख़राबी क्या है? इस मौके पर ग़ालिब का एक शेर याद आ गया– वो पूछते हैं कि ग़ालिब कौन है? कोई बतलाओ कि हम बतलायें क्या?" किसनवा ने बड़े ही दिलकश अंदाज़ में ग़ालिब का शेर पढ़ा।

"भई वाह!" साथ खड़े दूसरे ग्राहक के मुंह से अनायास निकल पड़ा। जिससे मणीराम और चिढ़ गया।

"फालतू बकवास मत कर किसनवा, नहीं तो दाँत झाड़ दूंगा तेरे, नहीं लगवाना पेंचर तुझसे।" मणीराम के स्वर में गुस्सा और झुंझलाहट साफ़ झलक रही थी। उसने साइकिल पकड़ ली।
"अरे....रे....रे साहब सुनिये तो!" ग्राहक हाथ से निकलता देख किसनवा हाथ जोड़ने लगा।

"अबे पीछे हट।" और मणीराम साइकिल लिए बड़बड़ाते हुए चल दिए, "पता नही, क्या समझते हैं अपने आपको, कोई तोप हैं क्या ? दो कौड़ी की दुकान नहीं है! फुटपाथ क़ब्ज़ाये हुए है हरामी, कारपोरेशन वालों को बोल दिया, तो होश ठिकाने आ जाएँ बच्चू के!"

"अबे ओये! मणीराम के बच्चे, तेरी हवा टाइट कर दूंगा स्साले...," जो किसनवा अब तक हाथ जोड़े गुहार कर रहा था, यकायक आँखें बड़ी करके दुर्वासा हो गया, "चुपचाप चला जा, वरना जबड़ा तोड के हाथ में धर देंगे," फिर साथ खड़े ग्राहक की ओर देखकर, "जेब में ढेला नहीं, पता नहीं, भिखारी कहाँ-कहाँ से चले आते हैं, मुंह उठाये पेंचर लगवाने!"

सुनी-अनसुनी करके मणीराम पीछे देखे बग़ैर ही आगे बढ़ता चला गया। उसमे इतना भी सामर्थ्य शेष नहीं था कि पलट के किसनवा को जवाब दे सके।

"आज फिर दफ़्तर पहुंचकर बड़े बाबू की झाड़ सुननी पड़ेगी।" किसनवा की दुकान और उसका ख़्याल जब पीछे छूट गया तो मणीराम अपने आप से ही बोला, "स्साली को कितनी दफ़ा समझाया है कि चार पैसे आदमी की जेब में फालतू रख दे, कहीं रास्ते में पेंचर हो गया, तो कहाँ मारा-मारा फिरे खसम! उसका क्या है, आज मरुँ कल तेरहवीं पे दूसरा कर लेगी। दफ़्तर आ मरेगी, तनखा वाले दिन। सारे पैसे डकार जाती है और मुझे दस-दस रुपये भी रुला-रुला के दिए जाते हैं।

छोटी-मोटी ज़रूरतों के लिए भी औरों के आगे हाथ फैलाना पड़ता है! साली लानत है ऐसी ज़िन्दगी पर! थू... इस झबरी की बच्ची से तो चन्द्रमुखी और फुलवा अच्छी थी। कम-से-कम पैसों पर तो डाका न डालती थी और झबरी तो मुंहफट भी है, सो अलग! दोनों बेचारी मुंह तो न लगती थीं।"

ooo

नाले के अन्दर पहले ही सूअरों के अनेक झुण्ड कीचड़ में लोट-पोटकर होकर एक-दूसरे से मस्ती और अठखेलियाँ कर रहे थे। एक मादा सुअर जो अपने सात-आठ छोटे-छोटे बच्चों के साथ उस झुण्ड में सबसे आगे चल रही थी। वह भी नाले की तरफ़ ही बढ़ी जा रही थी। नाले के आस-पास का स्थान निर्जन था। समीप ही एक पॉश कालोनी की सीमा नाले से बीस-पच्चीस मीटर पूर्व एक ऊँची दीवार द्वारा समाप्त होती थी। दीवार ऊपरी हिस्से की तरफ़ कंटीली तारों की बाड़ बनी थी और कांच के टुकड़े भी लगे हुए थे ताकि कोई भी दीवार फांद कर कालोनी में प्रवेश न कर सके। नाला कोई बीस हाथ लम्बा-चौड़ा था। यहाँ से उसका आरम्भ और अंत दृष्टिगोचर न होता था। दिखाई देता था सिर्फ़ नाले के दोनों छोर पर झाड़ियों और घास का झुरमुट, व दूर-दूर तक वातावरण में छाया एक शून्य, जो बीच-बीच में पंछियों के चहचहाने से भंग होता था।

"धत, तेरी माँ की आँख।" कहकर मणीराम ने मादा सुअर की फ़ौज की ओर पत्थर फेंका। झुण्ड ने अपना मार्ग बदल दिया। अब नाले के एक टूटे हुए हिस्से से, वे सब नाले में उतरने लगे। जल स्तर काफ़ी काम था। अतः कुछ ही देर बाद सुअर के बच्चे भी उस कीचड़ में मस्ती और अठखेलियाँ करने लगे। जहाँ पहले से ही सूअरों के अनेक झुण्ड अटखेलियाँ करने में मस्त थे।

"उस्ताद, आज सारा दिन कहाँ गायब रहे, दफ़्तर नहीं आये?" मंगतू ने ललचाई निगाहों से नमकीन और शराब की थैली को देखा और लार टपकाते हुए कहा, "घीसू के यहाँ क्या कर रहे थे?"
"अबे मंगतू, आज का दिन ही ख़राब निकला। दफ़्तर आ रहा था कि पेंचर हो गया और जेब में एक ढेला भी नहीं था।" मणीराम ने एक ओर थूकते हुए कहा।

"उस्ताद फिर ये माल-पानी!" शराब की थैलियों और नमकीन के पैकेट को देखकर मंगतू पुनः लार टपकाने लगा।

"अबे ढक्कन, पहले पूरी बात सुन लिया कर! बीच में बड़बड़ाता रहता है!" मंगतू के बीच में बोलने पर मणीराम झल्लाया, "पैंचर लगवाने के लिए उस हरामी दगड़ू से पैसे मांगे, तो लगा खसम, अपनी दस कहानियां सुनाने!"

"अच्छा तो फिर?"

"फिर क्या, मैं भी कहाँ छोड़ने वाला था? स्साले के हाथ जोड़े, माथा टेका, नाक रगड़ी, सौ क़समें खाईं, तब कहीं जाके स्साला नौटंकी, सौ का पत्ता ढीला किया। वहां से निकला तो रास्ते में घीसू मिल गया। बस, दिनभर उसके यहाँ ताश खेलते रहे। स्साला घीसू छोड़ ही नहीं रहा था हमको कि तुम आ गए और उसके बाद की कहानी तो तुम्हें पता ही है कि ठेके में गए और ये माल-पानी।"

"तभी तो मैं सोचूं, आज तुम दोनों दफ़्तर क्यों न आये?" मंगतू ने हँसते हुए कहा, "अच्छा उस्ताद क्या सही बात है? घीसू की लुगाई रामकली धन्धा भी करती है।"

"अबे तभी तो मज़े में है घीसू! क्या ठाठ हैं उसके!" मणीराम ने शराब की थैली को हाथों में उछाला, जैसे वजन तोल रहा हो।

"उस्ताद अब सब्र नहीं हो रहा। खोल भी डालो ये लालपरी, पहली धार की!" मंगतू लार टपकाते हुए बोला।

"ले पकड़, ये अपनी लालपरी।" कहकर मणीराम ने एक थैली मंगतू की तरफ़ फेंकी। वह थैली पर ऐसे झपटा जैसे जन्म-जन्म का भूखा अन्न पर झपटता है। दूसरी थैली का मुंह फाड़ते हुए मणीराम बोला, "और ये मेरी लालपरी!"

दो घूंट पीने के बाद मंगतू ने नमकीन का पैकेट फाड़ा और नमकीन खाने लगा। जबकि मणीराम ने गटागट ... एक ही साँस में पूरी थैली शराब हलक के नीचे उतार दी, "ससुरी ख़त्म हो गई!" कहकर मणीराम ने खाली थैली एक तरफ़ फेंकी, तो देखा कि मंगतू ने पूरे मुंह में नमकीन ठूस रखी है और खाने में उसे दिक्कत हो रही है।

"अबे सारी नमकीन ख़ुद ही खा जायेगा या कुछ अपने बाप के लिए भी छोड़ेगा!" कहकर मणीराम ने नमकीन का पैकेट अपने क़ब्ज़े में कर लिया।

"क्या करें मणी भाई, अपुन को तो पीने के बाद खाने को कुछ चाहिए।" नमकीन चबाते हुए मंगतू ने मदमस्त होकर कहा, "मीट की बोटी होती तो मज़ा ही आ जाता।"

"तेरी लुगाई जो बैठी है यहाँ, पकाने को! स्साला, मीट की बोटी खायेगा!" मणीराम ने नमकीन हथेली पर गिराते हुए कहा, "अबे थैली के पैसे हैं नहीं कंगले के पास, और बात करता है, मीट की बोटी होती तो... जाके नाले में सुअर को ही कच्चा चबा डाल।"

खी...खी... करके बन्दर की माफिक हंस दिया मंगतू।

"अब दांत क्या फाड़ रहा है, सारा नशा हिरन कर दिया, बेकार की बातें करके। ला फाड़ दूसरी लालपरी, पहली धार की।" मणीराम ने बिगड़ते हुए कहा और दूसरी थैली पीने लगा।

"यार मणीराम, कई बार कोठी-कार वालों को देखकर मैं सोचता हूँ, हम ग़रीबी के इस नर्क में क्यों पड़े हैं? आख़िर भगवान ने हमारे साथ इतना बड़ा अन्याय क्यों किया?" मंगतू को नशा चढ़ने लगा था।

"अबे इसे नरक कहता है। ज़िन्दगी का असली स्वर्ग तो हम लोगों का ही है। इसके मज़े तो ग़रीब आदमी ही ले सकता है।" मणीराम भी थोड़ा-थोड़ा झूमने लगा था।

"बग़ैर पैसों के मज़े?"

"अबे पैसे वाले को जाके पूछ, कितना सुख-चैन से होते हैं वो? हर वक़्त चिंता में झुरते हैं! न खाने का वक़्त, न पीने का। हर वक़्त लेन-देन की बातें। सौ झंझट पैसे वाले को।" किसी दार्शनिक की भांति मणीराम बोला, "अपुन को देख, फटेहाल हैं मगर मस्तमलंग। जहाँ दो पैसे हुए नहीं कि हम लोग पहुँच जाते हैं, स्वर्ग का आनंद लेने। न कोई डर, न चिंता-फिकर, सारी ज़मीं हमारी... सारा आसमां हमारा। वो दीवार देख रहे हो... ऊँची दीवार! वहां अमीरों की दुनिया ख़त्म होती है, और वहां से इधर नाले की तरफ़ हमारी ज़िन्दगी और मौजमस्ती की दुनिया शुरू होती है।" मणीराम गालियां बकने लगा, "स्साला, सारी ज़िन्दगी कीड़े का माफिक रेंग-रेंगकर बदबू-कीचड़ में ही मर जायेगा अपुन लोग, मगर अमीरों की उस दीवार के पार झांकना तो दूर, कभी छू भी नहीं पायेगा। स्साला!"

"बरोबर बोलता है मणीराम भाई, बरोबर।" मंगतू ने पूरी थैली गटक ली और मणीराम के हाथ में नमकीन के पैकेट को ऐसे देखने लगा जैसे किसी मीट की दुकान पर कुत्ते मांस काटते हुए कसाई को देखते हैं कि कब वो कुछ फेंके और वे उस पर झपटें।

"अरे मणीराम भाई, ख़ाली पेट लेक्चर ही देते रहोगे या नमकीन का पैकेट भी दोगे! अकेले-अकेले ही चट कर रहे हो!" जब मंगतू ने देखा की मणीराम अकेले ही सब नमकीन उडा जायेगा तो उससे बोले बग़ैर नहीं रहा गया।

"कब से आँखें गड़ाए देख रहा है कम्बख़्त? अभी दो मुट्ठी भी नहीं खा पाया हूँ, और खुद पहले फाके मार-मारके आधा पैकेट चट कर गया था।" दो थैली का नशा था मणीराम की आवाज़ में, "चल क्या याद रखेगा तू भी, किस रईस से पाला पड़ा है!"

मणीराम द्वारा अपनी ओर फेंकी हुई नमकीन की थैली पर मंगतू ऐसे झपटा, जैसे जूठे पत्तल पर कोई कुत्ता, और बच रही मुट्ठीभर नमकीन को एक साँस में ऐसे चबा डाला, कहीं मणीराम दुबारा न मांग बैठे।

"यार मणीराम, कोई उपाय बताओ, मेरी जोरू बड़ी बक-बक करने लगी है।" नमकीन चबाते-चबाते मंगतू बोला।

"अबे दे दिया कर दो लपाड़े खैंच के। मर्द का बच्चा है या किसी हिजड़े की कोख से जन्मा है रे मंगतू! जो जोरू की बक-बक सुनता है!" मणीराम ने कड़क कर कहा, "चल बीड़ी सुलगा।"

मंगतू खी...खी... करके बन्दर की माफिक हंस दिया और बोला, "वाह क्या डायलॉग मारत हो मणीराम भाई, बिल्कुल अमरीशपुरी की आवाज़ लगत है तुम्हार ठाकुरों जैसी!" और बीड़ी सुलगाकर मंगतू ने एक मणीराम को दी दूसरी से स्वयम कश मारने लगा।

"उस्ताद अब एकठो गाना हुई जाई।" मंगतू ने धुआँ उड़ाते हुए कहा।

"गाना सुनेगा ससुर!" कहकर मणीराम ने खंखार के गला साफ़ किया और बीड़ी का एक लम्बा कश खींचने के बाद पंचम सुर लगाके गाने लगा, "का जानू मैं सजनिया SSS... चमकेगी कब चंदनिया SSS... घर में ग़रीब के..."

"उठाई ले घूंघटा SSS...," अपना चेहरा गमछे से ढकते हुए मंगतू ने गाने की अगली लाइन गाई, "उठाई ले घूंघटा SSS..., उठाई ले घूंघटा चाँद देख ले।"

इसके बाद भी दोनों ने कई फ़िल्मी, ग़ैर-फ़िल्मी गीत गाये। मसलन बिहारी, भोजपुरी और पुरबिया के हिट गीत और लोकगीत भी। साथ ही साथ दोनों ने भांति-भांति के अभिनय भी बनाये, जब तक कि दोनों थककर चूर और बेदम न हो गए।

"अच्छा उस्ताद, एक बात बताओ।" मंगतू ने हाँफते हुए कहा, "तुम्हारा मानना है कि लुगाई को मारपीट के बस में करना चाहिए?"

"बिलकुल, ई मा ग़लत का भया?"

"उस्ताद, अगर ज़्यादा मार-पिटाई से ससुरी जोरू भाग गई तो?" मंगतू ने अपने मन की शंका जतलाई।

"अबे तो घबराता क्यों है, दूसरी आ जाएगी? हमीं को देख ले, पहली दोनों लुगाइयाँ मार-पिटाई के चलते ही भागी थीं, और ये तीसरी झबरी भी मार खा-खाके... खा-खाके सीधी हो गई है।" कहते-कहते एक पल को मणीराम सिहर उठा और उसके रौएं खड़े हो गए। झबरी का चेहरा

याद आते ही उसे कानों में गालियों का कर्कश शोर-सा सुनाई देने लगा।

"तो मणी भइया प्यार का करत हो झबरी भाभी का?" कहकर मंगतू ने डकार ली।

"अरे प्यार भी करते हैं ससुरी को, स्साली भैंण की... बड़ी तेज़-तर्रार औरत है। काटने को आती है दिनभर और... रात होते ही... रात होते ही पैरों पर रपट जाती है।"

"ई बात का क्या सबूत, तुम झबरी भाभी का प्यार भी करत हो?" मंगतू फिर डकारा।

"अबे तीन पैदा कर चुका हूँ, और चौथा पेट में है ससुरी के। तोका प्यार का और कोनो सार्टिफिकेट चाहिए रे मंगतू!" मणीराम तैश में आकर बोला।

"बच्चे तो बलात्कारी भी पैदा करत हैं!" मंगतू का पारा भी सातवें आसमान पर चढ़ गया।

"अबे क्या बक रहा है बे?" मणीराम ने आँखें दिखाई।

"देख मणी, बहुत देर से तेरी चपड़-चपड़ सुन रहा हूँ।" मंगतू ने भी अपनी मूछों को ताव दे डाला।

"स्साले तो गुस्सा काहे को दिला रहा है?" मणीराम भी फैल गया।

"फिर!" मंगतू उठ खड़ा हुआ।

"एक तो मुफ़्त की पीता है, तिस पर आँखें दिखाता है, ठहर जा...।" कहकर मणीराम मंगतू की तरफ़ लपका।

देखते-देखते कोनों शराबी आपस में गुत्थम-गुत्था हो गए। कौन पिट रहा था या कौन पीट रहा था, इसका होश दोनों को नहीं था। लड़ते-पिटते जब इतनी ताकत भी शेष न रही कि खड़ा हुआ जा सके तब दोनों दोस्त वहीं आस-पास लुढ़क गए। नशे की अधिकता ने दोनों को शीघ्र सुला दिया था। पास का वातावरण वैसा ही था। नाला पूर्वत बह रहा था। जिस पर सुअरों के झुण्ड अब अभी भी अठखेलियाँ कर रहे थे।

ooo

"मोहे पनघट पे नंदलाल छेड़ गयो रे, मोहे..." गाते हुए मणीराम की बोलती बंद हो गई। घर की ड्योढ़ी पर झबरी को खड़ा देख उसके सुर-बेसुरे हो गए।

"कहाँ मरा हुआ था रातभर से, मिल गई फ़ुरसत घर आने की?" झबरी ने आँखें तरेरी।

"रात दगड़ू के बच्चे की जन्मदिन पार्टी थी।" नशे में लड़खड़ाते मणीराम ने बड़ी चतुराई से सफ़ेद झूठ बोला।

"तो क्या रात को घर न मर सकते थे?" झबरी के स्वर में वही कठोरता थी।

"अरे बांवली, दगड़ू हमारी तरह कंगला थोड़े है। बड़े साहब के यहाँ कोठी में काम करता है। अंग्रेजी शराब की बड़ी-बड़ी बोतलें। मीट-सीट...! " ख़्याली पुलाव बनाते-बनाते वास्तव में मणीराम के मुख से लार टपकने लगी। वह चटकारे लेते हुए बोला, "अपने यहाँ तो एक ज़माना गुज़र गया है मीट बने! क्या मीट था सुअर का ताज़ा-ताज़ा मोटा गोश्त आहा!"

"हम यहाँ रूखी-सूखी को भी तरसे और वहां शराबियों के साथ मीट खाया जाता है! आग न लगी मुई ज़बान को मीट खाते।" झबरी चिढ गई।

"बकवास बंद कर, ज़ायका न बिगाड़!" कल्पना के उसी मिथ्या स्वाद में खोये हुए मणीराम बोला, "क्या मीट था और क्या अंग्रेजी दारू थी? पहली धार की!" उसे झबरी के चिढ़ने पर बड़ा

आनंद आ रहा था। उसे मन-ही-मन इस बात की ख़ुशी थी कि उसने झबरी से अपने तिरस्कार का बदला ले लिया। हालाँकि रात को वह मंगतू के साथ थैली पी के वहीं नाले के किनारे पड़ा हुआ था और मीट की जगह उसने दो मुट्ठी नमकीन ही खायी थी। सुबह नशा टूटने के बाद भी बची हुई थैली मणीराम ने अपने हलक से नीचे उतार ली थी और नशे में झूमता-गाता वह घर पहुंचा था।

"आग लगे मुई शराब को, कमबख़्त मौत भी न आती इन शराबियों को?" झबरी ने सर पीटा। शोर-शराबा सुनकर बच्चे भी उठ गए थे और माँ के पास आ खड़े हुए।

"कभी तो अच्छे वचन बोल लिया कर!" मणीराम ने झुंझलाकर कहा, "सोते-जागते वही बकवास, सारा मज़ा किरकिरा कर दिया!"

"तो गाली खाने वाले काम क्यों करता है तू?"

"तेरे बाप के पैसों की पीता हूँ?"

"आज के बाद लेना किराये-भाड़े के पैसे।"

"ठीक है मैं ड्यूटी नहीं जाऊँगा।"

"खिलाना अपने चीथड़े इन शैतानों को।" कहकर झबरी ने बच्चों को मणीराम की तरफ़ धकेला। बच्चे रोने लगे। शेरनी पुनः दहाड़ी, "मरते भी नहीं मरदूद। कभी ज़हर दे दूंगी इन सपोलों को!" झबरी पैर पटकते हुए बाहर की ओर जाने लगी, "आज बाबूजी का पहला श्राद्ध-कर्म था। अभी कुछ देर में पंडितजी आने वाले हैं और ये शनिचर मांस-मदिरा खा-पीकर आ गया।" बड़बड़ाते हुए झबरी दूसरी तरफ़ चली गई।

"रोओ मत मेरे कलेजे के टुकड़ों। मेरे लाल, मेरे शेरों। हम तुम्हें एक गाना सुनाते हैं।" मणीराम ने खंखार के गला साफ़ किया, "सजनवा बैरी हो गए हमार। चिट्ठिया हो तो हर कोई बांटे। भाग न बांटे कोई... करमवा बैरी हो गये हमार!" दोनों बच्चे रोना भूलकर मणीराम को ऐसे देखने लगे। जैसे वह कोई अजूबा हो!

ठीक इसी समय द्वार पर श्राद्ध-कर्म हेतु पंडितजी आ पहुंचे। मणीराम को नशे की हालत में देखते ही सारी कहानी उनकी समझ में आ गई।

"पंडितजी नमस्कार!" झूमते हुए मणीराम बोला, "आओ-आओ आपका स्वागत है।"

झबरी भी कमरे से बाहर आ गई।

"छी: छी:! राम-राम!! घोर कलयुग आ गया! मणीराम तुम तो पक्के मलेच्छ हो गए हो। कम-से-कम अपने पिता के श्राद्ध-कर्म के दिन तो शराब न पीते! तुमने तो अपना लोक-परलोक दोनों ही बिगाड़ लिया है।" फिर झबरी की तरफ़ देखते हुए पंडितजी कठोर स्वर में बोले, "क्या हमारा अपमान करने के लिए बुलाया गया था झबरी देवी?"

"नहीं पंडितजी! भगवान क़सम, मुझे ख़ुद ऐसी उम्मीद नहीं थी कि ये कल के गए, आज सुबह इस हाल में लौटेंगे शराब पिए!" झबरी बिलख पड़ी।

"शराब नहीं मीट भी खाया है पंडितजी, सुअर का मोटा-मोटा गोश्त।" मणीराम ने उंगली चाटकर चटकारे लेते हुए कहा।

'ऊ sss... आ sss...' सुनकर ही पंडित जी को उल्टी आ गई, "इस घर में तो एक पल ठहरना भी धर्म का घोर अपमान है।"

"ओय पंडित के बच्चे, उल्टी क्या तेरा बाप साफ़ करेगा?" मणीराम अकड़कर बोला, "आया

बड़ा धर्म का ठेकेदार! हमें मत समझाओ ये सब पाप क्या है? पुण्य क्या है? धर्म के बहाने मरे हुए लोगों की श्राद्ध-तेरहवीं पर डट कर दावत खाते हो, क्या ये पाप नहीं?"

"चमार हो न, इसलिए ऐसा कह रहे हो।" पंडितजी आवेग में बोले, "तुम नीच कुल के लोग सदैव नरक में पड़े सड़ते रहोगे। कभी स्वर्ग न पा सकोगे!"

"ओय पंडित फालतू मत बोल। कौन जाने मारने के बाद क्या होता है? इसलिए नरक का डर हमको न दिखलाओ। चमार बोलता है हमको, ठहर अभी बतलाता हूँ।" कहकर मणीराम पंडितजी को पीटने की गरज से आगे बढ़ा, "रोज़ भगवान का नाम लेता है। आज तुझे भगवान के पास ही भेज दूँ।"

"राम-राम! ब्राह्मण को हाथ दिखाते हो, घोर कलयुग!" कहकर पंडितजी अपनी धोती ऊपर किये वापिस भागने लगे।

"ठहर अभी उतारती हूँ तेरा नशा!" पंडितजी का यह अपमान देख झबरी का पारा सातवें आसमान पर चढ़ गया। वह पहले से ही मणीराम से कहर खाये बैठी थी। अब तो पर्याप्त बहाना भी था। वह ग़ुसलख़ाने से कपडे धोने की थापी उठा लाई और पूरी ताकत से मणीराम की धुलाई करने लगी। इस तरह जैसे वह कपड़ों को धो रही हो।

"हाय मइया री! तोड़ दिया पैर डायन ने।" हाथों से कई वार रोकने में मणीराम सफ़ल हुआ था। मगर एक तगड़ा वार जो उसके बाएं पैर को निशाना लेकर लगाया गया था। उसे रोकने में वह असमर्थ था। नतीज़तन वह घुटना पकड़ते हुए मारे दर्द के चिल्लाता हुआ वहीँ ज़मीन पर गिर पड़ा। इस बीच झबरी ने एक-दो प्रहार और किये और थापी वहीँ फेंक दी।

"जीना हराम कर दिया है कंजर ने।" मगर झबरी के ये शब्द सुनने से पहले ही मणीराम बेहोश हो चुका था।

ooo

एक महीने बाद।

"साबजी, राम-राम!" बड़े बाबू के सामने थोड़ा संकुचाते हुए मणीराम बोला।

"आख़िर मिल गई फ़ुर्सत दफ़्तर आने की!" अंगुली से ऐनक सीधे करते हुए बड़े बाबू बोले।

"वो साबजी, पैर में पलस्तर चढ़ा था।" मणीराम ने सफ़ाई पेश की।

"पूरे एक महीने बाद शक्ल दिखा रहे हो मणीराम, कुछ तो शर्म करो।" बड़े बाबू ने बड़े रूखे स्वर में कहा।

"वो साबजी, मैंने मंगतू से कहलवा भेजा था कि ज़ीने से पैर फिसल कर गिरा तो हड्डी टूट गई थी। डॉक्टर ने पूरे महीने के लिए पलस्तर बंधवा दिया था।" मणीराम ने थोड़ा विश्वास लाकर कहा, "साब जी, दफ़्तर तो दूर की बात है। घर में लैट्रीन-बाथरूम जाने में भी बड़ा दिक्कत होता था।"

"लेकिन मंगतू तो कह रहा था, तुम्हारी घरवाली ने डंडे से पीटा, तब तुम्हारा पैर टूटा!" बड़े बाबू के होंठों पर एक अजीब सी मुस्कान तैर गई।

"नहीं साब, झूठ है ये सब! राम क़सम, ज़ीने से पैर फिसला था।" मणीराम अपनी बात पर अडिग रहा और मन-ही-मन मंगतू को गाली देने लगा, 'स्साला हरामखोर मंगतू! पेट में बात नहीं पचती कमीने के! आज शाम को ख़बर लूंगा स्साले की।'

"देखो मणीराम, क्या झूठ है? क्या सही? हम कुछ नहीं जानते और न ही जानना चाहते हैं कि तुम्हारा पैर घरवाली के डंडे से टूटा या ज़ीने से गिरकर। हम तो इतना जानते हैं कि कंपनी से तुम्हारा दाना-पानी उठ चुका है।"

"ऐसा मत बोलो साब, हम तबाह हो जायेंगे। मेरे बाल-बच्चे भूखे मर जायेंगे।" मणीराम हाथ जोड़कर मनुहार करने लगा।

"देखो भाई, मैं कुछ नहीं कर सकता। ऊपर से आदेश हैं।"

"नहीं साब!" मणीराम बड़े बाबू के पैरों पर रपट गया, "ऐसा मत करिये।" मणीराम का गला भर आया और आँखों से आंसू निकल आये।

"ये सब मैनेजमेंट का फ़ैसला है। पैर पकड़ने से कोई लाभ नहीं होने वाला!" बड़े बाबू ने अपने पैर पीछे हटाते हुए वाक्य पूरा किया।

"नहीं साब! भगवान के लिए ऐसा मत करो। पेट पर लात मत मारो। मेरे बाल-बच्चों का कुछ तो सोचो!" मणीराम बुरी तरह गिड़गिड़ाया।

"देखो मणीराम, अब कुछ नहीं हो सकता। रोना गिड़गिड़ाना व्यर्थ है। पहले भी तुम कई बार बग़ैर बताये छुट्टियां कर चुके हो। मैनेजमेंट पहले ही तुम्हारी इन हरकतों से परेशान थी। अब तो उनके पास पर्याप्त कारण भी है तुम्हें निकालने का। नशेड़ी, भंगेड़ी और गंजेड़ी को कंपनी अब बर्दाश्त नहीं कर सकती।" बड़े बाबू ने दो टूक शब्दों में कहा।

"नहीं साब, रहम करो।" मणीराम रोने लगा।

"देखो मणीराम, एक-न-एक दिन तो ये होना ही था। एक तो ड्यूटी पर तुम दारू, भांग, चरस, अफ़ीम खाकर आते थे। दूसरे, काम से ज़ियादा गाली-गलौज करते-फिरते थे। तीसरे, जब जी चाहा आये! जब जी चाहा चले गए। चौथे, बग़ैर बताये दो-चार दिन नदारद रहना! आख़िर कोई बर्दाश्त करे तो कब तक?" बड़े बाबू ने मणीराम के सारे कर्मों का लेखा-जोखा कह सुनाया, "आख़िर सब्र की भी एक सीमा होती है या नहीं!"

"साब, मैं सब बुरी आदतें छोड़ दूंगा।" मणीराम पुनः गिड़गिड़ाया।

"सॉरी, मेरे हाथ में कुछ नहीं है। तुम्हारा फैसला हो चुका है।" बड़े बाबू ने कठोर स्वर में कहा, "दिवाली के दो रोज़ बाद कभी भी आकर अपना हिसाब-किताब ले जाना।"

"साब रहम करो!" मणीराम पुनः पैरों में रपटने लगा।

"छोडो मेरा पैर!"

"साब..."

"आई से स्टॉप दिस नॉनसेंस? ख़बरदार, ये सब नौटंकी दफ़्तर से बाहर जाकर करो, गेटआउट। मुझे और भी कई काम करने हैं। तुम्हारी फालतू बकवास सुनने का समय नहीं है मेरे पास।" बड़े बाबू ने गुस्से में भरकर कहा, "जितना प्यार से बोलो सिर पर चढ़ते हैं।"

"अच्छा साब जी, भगवान आप लोगों के बाल-बच्चों को आबाद रखे।" और किसी हारे हुए सिपाही की भांति मुंह लटकाये मणीराम कमरे से बाहर निकल आया।

ooo

"अम्मा-अम्मा, बाहर आइसक्रीम वाला आया है।" गुणीराम बोला।

"चल पीछे हट। पोछा लगाने दे। यहाँ राशन-पानी के लिए पैसे नहीं और लाटसाहब को आइसक्रीम चाहिए।" झबरी ने पोछा लगाते हुए कहा, "बाप महीने भर बाद आज ड्यूटी पर गया है। जब तनख्वाह आएगी। तब खाना आइसक्रीम।"

"नहीं मुझे अभी चाहिए।" गुणीराम ज़िद करने लगा।

"खायेगा एक थप्पड़ सुबह-सवेरे।" झबरी डांटते हुए बोली, "चल भाग यहाँ से।"

"माँ-माँ, मैं भी आईतिरिम थाऊंगा!" तभी मंझला चेतराम भी वहां आ पहुंचा। गुणीराम को आइसक्रीम के लिए रोता देख वह भी अपने तुतले स्वर में माँ से आइसक्रीम मांगने लगा।

"देखो बेटा कल दिवाली है। जी-भर के मिठाई खाना कल दोनों।" झबरी ने प्यार से समझाया। दोनों बच्चे खुश हो गए। उन्हें छह महीने पहले की याद हो आई। जब मामाजी मिठाई लाये थे। बच्चे उसका स्वाद अब तक न भूले थे।

"वैसी मिठाई, जैसी मामाजी लाये थे!" गुणी बोला।

"हाँ बेटा।"

"तो फिर मैं अकेले ही खाऊंगा सारी मिठाई।" गुणीराम चेतराम को ठेंगा दिखाते हुए बोला।

"नहीं मैं थाऊंगा, थाली मिथाई।" तुतलाते हुए चेतराम रोने लगा।

"दोनों भाई खाना।" झबरी ने मुस्कुराकर कहा।

दोनों बच्चे ख़ुशी-ख़ुशी बाहर खेलने चले गए। उनको गए पांच मिनट भी न बीते थे कि मणीराम ने दरवाज़े पर दस्तक दी।

"आज इतनी जल्दी कैसे आ गए?" बरामदे में मणीराम को साइकिल खड़ी करता देख झबरी आश्चर्य से बोली।

मणीराम ख़ामोश था। झबरी को अनदेखा किये वह गंभीर मुद्रा में ही कमरे की तरफ़ बढ़ने लगा।

"मुंह में कीड़े पड़े हैं! बोल क्यों नहीं रहा?" झबरी अपनी इस उपेक्षा पर खिन्न होकर बोली।

"अब ठण्ड पड़ गई तुझे! और कर पिटाई खसम की! अब खा अपनी हड्डियाँ और ज़हर दे दे सपोलों को।" मणीराम तैश में भर उठा। मन किया दो थप्पड़ रसीद कर दे झबरी के मगर खून के घूंट पीकर रह गया।

"हाय राम! क्या हुआ साफ़-साफ़ बोलो!" झबरी का दिल बैठ गया।

"खसम की नौकरी खाकर पूछ रही है साफ़-साफ़ बोल! स्साली और चला हाथ... दूसरी टांग भी तोड़ दे खसम की। टांग क्या, सांसों की डोर भी तोड़ दे। इस नरक से मुझे भी निज़ात मिले। फिर मेरी तेरहवीं पे दूसरा खसम करके जन्नत के मज़े लूटियो।" और भी क्रोधवश न जाने क्या-क्या अनाप-शनाप बोलता रहा मणीराम, लेकिन नौकरी छूट जाने के सदमे के अतिरिक्त झबरी को कुछ और सुनाई नहीं पड़ रहा था। मस्तिष्क भाव-शून्य हो चुका था झबरी का, बस वह मणीराम का चलता हुआ मुंह देख रही थी। उसे गालियाँ बकता हुआ जब मणीराम कमरे में घुस गया तो सदमे की-सी हालत में वह सर पकड़कर वहीं बैठी विलाप करने लगी।

ooo

"देखो जी, दिल छोटा मत करो, कहीं-न-कहीं नौकरी फिर मिल ही जाएगी।" झबरी ने बड़े प्रेम से मणीराम के बालों में हाथ फेरते हुए कहा, "आज दिवाली है और बच्चे कई दिन से इसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं कि आज उन्हें खाने को ख़ूब मिठाई मिलेगी और फोड़ने को पटाखे, लेकिन घर के हाल तुमसे छिपे नहीं हैं। फूटी कौड़ी तक नहीं बची है घर में। कल चावल भी पड़ोस से मिल गए थे, तो जाकर खिचड़ी बनी थी। आपको तो कंपनी से हिसाब-किताब अभी दो दिन बाद मिलेगा। कुछ जतन करो। यार-दोस्तों से उधार मांगकर मिठाई और पटाखे ले आओ।" झबरी रो-सी पड़ी, "हम तो अभाव में जी ही रहे हैं पर तीज-त्यौहार पर बच्चों का मन क्यों मारा जाये?"

"कौन देगा उधार मुझको? जिससे भी पैसे लिए। आज तक वापिस नहीं दिए।" मणीराम ने बड़े उदास मन से कहा। कल से ही उसका मूड उखड़ा हुआ था। रात ठीक से सो भी नहीं पाया था मगर झबरी की बात उसके कलेजे को लग गई कि तीज-त्यौहार के मौके पर बच्चों का मन क्यों मारा जाये? वह खाट से उठ खड़ा हुआ, "ला बक्से से मेरी घडी निकल दे। अगर कहीं जुगाड़ न हुआ तो घड़ी काम आएगी। तू ठीक कहती है बच्चों का मन क्यों मारा जाये?"

झबरी भीतर चली गई। पास ही बच्चे सोये हुए थे। मणीराम ने स्नेह से उनके सर पर हाथ फेरा। सामने दीवार घडी सुबह के साढ़े आठ बजा रही थी। मणीराम अपने आप से ही बातें करने लगा, 'भला ग़रीब आदमी की भी क्या ज़िन्दगी है? अभावों में ही जीता है! मरता है! मृगतृष्णा की भांति हर वस्तु को पाने की लालसा लिए तरसता है! जैसे कोई पागल उम्रभर अपनी छाया को पकड़ने की चेष्टा करता है। इन अभागों ने भी निर्धनता में जन्म लिया है और जीवनभर ये भी अभावों और मृगतृष्णाओं के महाजाल में भटक-भटक कर अपने प्राण त्याग देंगे। किन्तु विधाता बड़ा निष्ठुर है! वह निर्धनों को रुखा-सूखा, बेस्वाद दीर्घ जीवन प्रदान करता है! आसानी से उनके प्राण हरण नहीं करता ताकि निर्धनता के नरक में पल-पल सड़ता-गलता रहे आदमी।' इन्हीं सब विचारों में मणीराम देर तक डूबा रहा।

"कहाँ खो गए जी?" मणीराम को लगभग झिंझोड़ते हुए झबरी ने कहा, "क्या ख़्वाब में मिठाई खा रहे थे?"

"मिठाई तो दूर की बात है। ग़रीब आदमी तो सपने में भी रूखी-सूखी तक पेटभर नहीं खा सकता!" मणीराम ने किसी विचारक की भांति कहा।

"क्या बात है जी, तबियत तो ठीक है तुम्हारी?" झबरी ने मणीराम के सर पर हाथ फेरते हुए कहा।

"भयानक रोग भी अभावों के नरकवास से ग़रीब को मुक्ति नहीं दिल सकते!" एक अजीब-सी हंसी हँसते हुए मणीराम बोला।

"देखो जी, आप ज़्यादा चिंता मत करो। ऐसी हालत में, मैं आपको बाहर नहीं जाने दूंगी।" झबरी ने घबराकर कहा। वह कल से ही मणीराम को देखकर चिंतित थी। कहीं परेशानी के आलम में मणीराम ने कुछ उल्टा-सीधा निर्णय ले लिया, तो वह कहाँ जाएगी? निकम्मा ही सही आख़िर जैसा भी है, मणीराम उसका पति है। उसका सहारा है। वह मणीराम की अजीबो-ग़रीब बातों का

कभी कुछ अर्थ लगाती, तो कभी कुछ और, "सुनो जी, आप घर पर ही आराम करो। मैं ही अड़ोस-पड़ोस से मांग-मूंगकर मिठाई-पटाखों का प्रबन्ध कर लूँगी।"

"अरी पगली, मुझे कुछ नहीं हुआ है।" झबरी की निर्मूल शंका का समाधान कहते हुए मणीराम बोला, "ख़ाली दिमाग़ शैतान का घर होता है। इसलिए इधर-उधर की कुछ बातें अपने आप ही दिमाग़ में आ गई थी। तू क्या समझती है? मैं इन मामूली दुखों से घबराकर ख़ुदकुशी कर लूंगा। अरे पगली मैं आख़िरी साँस तक जीने में विश्वास रखता हूँ। ला घडी दे मैं चलता हूँ। देखूं कहीं जुगाड़-पानी हो जाये।"

"देखो जी, इंतज़ाम हो या न हो, आप जल्दी घर आ जाना। हमें चिन्ता लगी रहेगी।" मणीराम जब दरवाज़े के क़रीब पहुँच गया, तो झबरी ने पीछे से कहा।

"बेफ़िक्र रह पगली, मैं गया और आया। मेरे बच्चे आज दिवाली के दिन भी मिठाई को तरसें! यह मुझसे बर्दाश्त नहीं होगा। मैं मिठाई-पटाखों का इंतज़ाम करके ही लौटूंगा।" इतना कहकर मणीराम बाहर चला दिया। झबरी भी द्वार पर आ खड़ी हुई और गली की तरफ़ तब तक देखती रही, जब तक कि मणीराम दृष्टि से ओझल न हो गया। भीतर बच्चे पूर्ववत सो रहे थे। निसफ़िक्र, दीन-दुनिया की झंझटों से बेख़बर, आज़ाद।

ooo

संध्या हो चली है। रंग-बिरंगी लाइटें जल उठी हैं। जिस कारण बाज़ार का सौंदर्य और भी निखर गया है। कोई आतिशबाज़ियाँ ख़रीद रहा है, तो कोई खील-बताशे, खिलौने, फल, मिठाइयां आदि। सभी अपने आप में मग्न हैं। राह चलते किसी का कोई परिचित चेहरा जान पड़ता, तो दोनों एक-दूसरे को शुभकामनायें देते हुए कहते, "दिवाली मुबारक़ हो।" जवाब में "आपको भी।" सुनाई पड़ता। कुल मिलाके निष्कर्ष ये कि दीपावली के कारण आज वातावरण में चहुँ ओर उत्साह-उमंग और हर्षोल्लास छाया हुआ है।

किन्तु इसी बाज़ार में खुशियों की भीड़ से अलग एक उदास-हताश और निराश चेहरा भी था। सुबह से वह इसी फ़िक्र में घुल रहा था कि वह भी अपने बच्चों के लिए मिठाई और आतिशबाज़ियां ख़रीदे। यार-दोस्तों के जितने भी परिचित चेहरे थे। वह सबकी चौखट पर गया, मगर उसका पुराना रिकार्ड देखकर, किसी ने उसकी सहायता न की। आख़िरकार उसने मन में एक दृढ निश्चय किया और सामने हलवाई की दुकान पे जा पहुंचा। वह कोई और नहीं अपना ही अभागा मणीराम था। जो सुबह से ही मारा-मारा फिर रहा था।

"लालाजी मुझे मिठाई चाहिए थी?" दुकान पर पहुँचते ही मणीराम ने संकोच के साथ कहा।

"कितने किलो चाहिए?"

"वो लालाजी बात ऐसी है कि..."

"कहो क्या बात है?"

"लालाजी मेरा पर्स न जाने कहाँ गिर गया है। सारे पैसे उसी में थे।"

"अबे चल रास्ता नाप। यहाँ ख़ैरात नहीं बंट रही है।"

"लालाजी उधार थोड़े ही मांग रहा हूँ।"

"फिर?" प्रश्नवाचक दृष्टि से लाला ने मणीराम को घूरा।

"लालाजी मेरे पास घड़ी है।" कहकर मणीराम ने कलाई से घड़ी खोलकर लालाजी की तरफ़ बढ़ा दी।

"अबे चोरी की तो न है?"

"ईश्वर की शपथ... मेरी है।"

"लेकिन ये तो बहुत पुरानी है।" लाला ने घड़ी को उलट-पुलट कर टटोला।

"लालाजी कुछ तो दे दो इसके बदले।" मणीराम ने हाथ जोड़कर गुहार की।

"मैं क्या घड़ियों की दुकान लगाऊंगा?" लाला अकड़ा।

"लालाजी मेरे बच्चे बड़ी उम्मीद लगाए मेरी राह तकते होंगे। सुबह का निकल हूँ। शाम ढलने वाली है।" और मणीराम ने अपनी सारी राम-कहानी लाला को कह सुनाई। हलवाई का दिल पिघल गया।

"बड़े बेदर्द हैं तुम्हारी कंपनी वाले। ऐन त्यौहार के मौके पर तुम्हें निकाल दिया। ख़ैर मैं तुम्हें एक किलो मिठाई दिए देता हूँ।" लाला ने दया दिखाते हुए कहा।

"लालाजी ऐसा कीजिये आधा किलो मिठाई और पचास रुपये दे दीजिये ताकि मैं बच्चों के लिए पटाखे भी ख़रीद सकूँ।" मणीराम ने हाथ जोड़कर कहा, "मेरे बाल-बच्चे तुम्हें दुआएँ देंगे।"

लाला ने ऐसा ही किया और मणीराम लाख-लाख दुआएं देता हुआ शीघ्र-अति-शीघ्र घर की तरफ़ बढ़ने लगा। उसके हाथ जैसे कोई गड़ा हुआ खज़ाना लग गया था। घर लौटने की ऐसी ख़ुशी, शायद उसने बरसों बाद महसूस की थी।

ooo

"मम्मी, पापा कब आएंगे?" गुणीराम ने खेलते हुए झबरी से पूछा। झबरी बच्चों सहित द्वार पर बैठी पति के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। गोदी में सबसे छोटा धनीराम बैठा था। चेतराम माँ की पीठ पर चढ़कर झूला झूलने की कोशिश कर रहा था, जबकि सबसे बड़ा गुणीराम झबरी की तरह काफ़ी बेताबी से पिता के आने की राह तक रहा था।

'कहीं पुरानी आदत के चलते दारू पीने न निकल गए हों?' अगर ऐसा हुआ तो, मैं उन्हें कभी माफ़ न करुँगी। हमेशा के लिए मायके चली जाऊंगी।' इंतज़ार करते-करते झबरी के मन में कई विचार उठने लगे। पिछले एक-डेढ़ घण्टे से द्वार पर मणीराम का इंतज़ार करते-करते उसे अब उकताहट-सी होने लगी थी। वह अपने आपको कोस रही थी कि बेकार ही वह अपने शराबी पति की बातों में रही। अब तक वह कहीं-न-कहीं अड़ोस-पड़ोस से मांग-मूंगकर मिठाई-पटाखों का इंतज़ाम कर लेती। वह उठकर भीतर चलने को ही थी कि गुणीराम के चिल्लाने के स्वर ने उसके क़दमों को रोक दिया।

"माँ-माँ, पापा आ गये।" उत्साह में भरकर गुणीराम बोला, "मिठाई-पटाखे भी लाये हैं।" और गुणीराम पिता की तरफ़ दौड़ पड़ा। पीछे-पीछे छोटा चेतराम भी इस तरह से भागा कहीं गुणी सारी मिठाई न खा जाये? साथ-ही-साथ वह भी ख़ुशी का इज़हार करते जा रहा था, "पापा मिथाई लाये!"

पति को अपनी उम्मीदों पे खरा उतरते देख झबरी ने बड़ी राहत की साँस ली। मणीराम घुटनों के बल बैठ गया और उसने दोनों बच्चों को गले से लगा लिया। गुणीराम मिठाई और पटाखों का थैला लेकर घर की और लपका तो झबरी ने उसके हाथ से थैला छीन लिया, "मिठाई और पटाखे, पूजा के बाद। चलिए, पहले आप नहा लीजिये। मैंने ग़ुसलख़ाने में बाल्टी भरकर रखी है।"

"जो हुकुम सरकार!" मणीराम ने झबरी को सलाम किया। सब घर के भीतर प्रविष्ट हो गए।

ooo

पूजा-पाठ चल रहा है। मणीराम के पीछे-पीछे झबरी भी आरती की पंक्तियाँ दोहरा रही थी, 'ओउम जय जगदीश हरे।' बच्चों का ध्यान पूजा-पाठ के बजाए, मिठाई के डिब्बे की तरफ़ अधिक था। वे मासूम सोच रहे थे कि कब ये सब नाटक ख़त्म हो तो मिठाई खाने को मिले। वो मिठाई जिसे खाये एक ज़माना गुज़र गया था। पूजा-पाठ ख़त्म होने के बाद झबरी देवी ने अभी मिठाई का डिब्बा खोला ही था कि दरवाज़े पर मंगतू पहुँच गया।

"क्या बात है अकेले-अकेले ही मिठाई खाई जा रही है मणीराम भाई।" मंगतू ने घर की ड्योढ़ी से ही मिठाई का डिब्बा देखते हुए कहा।

"आओ-आओ मंगतू भाई, बड़े मौक़े से आये। लो तुम भी खाओ मिठाई।" मणीराम ने मंगतू को भीतर आने का निमन्त्रण देते हुए कहा।

"अरे एक हम ही नहीं, पूरी चण्डाल-चौकड़ी आई है तुम्हें दारू और ताश का न्यौता देने।" कहते हुए मंगतू भीतर प्रवेश कर गया। उसके पीछे-पीछे आठ-दस जने और आ पहुंचे। जिसमे सुखिया, घीसू, दगड़ू और न जाने कौन-कौन से परिचित-अपरिचित चेहरे थे।

दीपावली की शुभकामनाओं, दुआ-सलाम आदि की औपचारिकताओं के उपरान्त चण्डाल-चौकड़ी वहीँ जम गई। बेचारी झबरी मारे शर्म के मिठाई का डिब्बा लिए रसोई में जाने को थी कि दगड़ू ने डिब्बा पकड़ लिया।

"अरे भाभीजी, डिब्बा कहाँ लिए जा रहे हो?"

"मैं प्लेट में रखकर लाती हूँ।"

"अरे क्यों तकलीफ़ कर रही हो, भाभी जी। इस डिब्बे से ही मिठाई उठा लेंगे।" कहते हुए दगड़ू ने डिब्बा अपने क़ब्ज़े में कर लिया।

बच्चे भी शरमाये हुए से माँ के पीछे-पीछे पल्लू थामे रसोई में चले गए। मणीराम चाहकर भी कुछ न बोल पाया। उसे इन निठल्ले दोस्तन पर बड़ा क्रोध आ रहा था। देखते-ही-देखते डिब्बा खुल गया और मिठाई को लेकर कुछ मारा-मारी और दो मिनट में डिब्बा साफ़। दगड़ू ने बर्फ़ी का एक टुकड़ा मणीराम को भी दिया था मगर उसे वह हलक से नीचे न उतार सका। बच्चे द्वार की ओंट से इन सब शैतानों को अपने हिस्से की मिठाई पर डाका डालते हुए टुकुर-टुकुर देख रहे थे। मणीराम ने ये सोचकर की चलो बच्चे कम-से-कम एक टुकड़ा बर्फ़ी का तो खा ही सकते हैं। मणीराम ने बर्फ़ी का टुकड़ा दिखाकर बच्चों को कमरे में आने का इशारा किया।

"अरे हम क्या बच्चों से कम हैं मणीराम भाई।" कहकर मंगतू ने मणीराम के हाथों से बर्फ़ी का वो आख़िरी टुकड़ा भी छीन लिया, "क्या करूँ, दिल ही नहीं भरा! बड़ी अच्छी मिठाई है!"

"आज घीसू के यहाँ रातभर विलायती दारू पीने और ताश खेलने का अच्छा-खासा इंतज़ाम हुआ

है। फिर तुम्हारे बिना तो हमारी कोई महफ़िल जमती ही नही मणीराम भाई। इसलिए ख़ास तुम्हें लेने आये हैं। हम सब वहीँ जा रहे हैं। क्या पता लक्ष्मी जी आज तुम पर मेहरबान हो जाएँ?" दगड़ू ने बड़े ही दोस्ताना अंदाज़ में कहा।

मणीराम की इच्छा तो नहीं थी, मगर घर में बच्चे मिठाई के लिए परेशान करेंगे ये सोचकर मणीराम भी उनके साथ हो लिया। चण्डाल-चौकड़ी के उठ जाने से कमरा पहले की भांति सुनसान हो गया। पूजा के स्थान पर 'दिया' पूर्ववत जल रहा था। फोटो में श्रीराम, सीता-लक्ष्मण सहित मुस्कुरा रहे थे। सामने फ़र्श पर पड़ा हुआ मिठाई का डिब्बा अपने लूटने की कहानी अपने-आप बयान कर रहा था। जिस पर दौड़कर गुणीराम ने क़ब्ज़ा कर लिया था। नन्हा चेतराम उससे खाली डिब्बा छीनने का असफल प्रयास करने लगा। सफलता हाथ न लगने पर वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा।

इस बीच झबरी भी कक्ष में आ चुकी थी। मिठाई के लिए बच्चों को तरसता देख उसका भी मन उखड गया था। वह एक कोने पर खड़ी अपने भाग्य को कोसने लगी।

"माँ-माँ," मंझले चेतराम ने माँ का पल्लू खींचते हुए अपने तुतले स्वर में कहा, "वो देखो फइया अतेले-अतेले मिथाई थाला है। मुदे भी मिथाई दो न।" रोते-रोते चेतराम ने बार-बार यही शब्द दोहराये।

झबरी के लिए ये सब सुन पाना लगभग असहनीय-सा हो गया। बच्चे के कोमल मासूम शब्द उसके हृदय को भेद रहे थे। मस्तिष्क भावशून्य हो चुका था उसका, "हरामजादे," कहकर झबरी ने एक थप्पड़ उस अबोध बालक को जमाया। वह छिटक कर दो हाथ दूर जा गिरा, "अगर मिठाई ही खानी थी तो किसी सेठ-साहूकार के घर जन्म लिया होता! यहाँ क्या मेरी हड्डियाँ खायेगा? चुपचाप खिचड़ी खाके सो जा, नहीं है कोई मिठाई-विठाई।"

वह मासूम रो देना चाहता था कि अपनी माता के इन आक्रोश भरे तीखे शब्दों को सुनकर उसने आंसुओं को बह जाने से रोक लिया। उसे समझ नहीं आ रहा था कि आख़िर उसका क़सूर क्या है? दिवाली पर सभी तो मिठाई खाते हैं।

बस, चुपचाप सिसकते हुए, वह निहार रहा था, अपने बड़े भाई गुणीराम को। जो मिठाई के ख़ाली डिब्बे को खुरचने में व्यस्त था।

•••

मास्टर जी:
एक अनकही प्रेमकथा

"मोहन जी," ठीक मेरे पीछे से पुकारे गए किसी स्त्री स्वर ने मेरी तंद्रा भंग की। मैं पनवाड़ी की दुकान पर खड़ा सिगरेट सुलगाने में व्यस्त था। मैं हैरान था! क्योंकि यहाँ नैनीडांडा (उत्तरांचल) मे, मेरे इस नाम से कोई परिचित नहीं था। गढ़वाल के इस ख़ूबसूरत पहाड़ी इलाके में आम ग्रामीणों के बीच मैं प्राय: स्कूली सम्बोधन से ही जाना जाता था। अर्थात् अधिकांश लाग मुझे 'मास्टर जी' कहकर ही पुकारते थे। या फिर मैं अपने स्टाफ साथियों के बीच 'यादव जी' के नाम से ही विख्यात था। कुल मिलाके निष्कर्ष ये कि अपना वास्तविक नाम 'मोहन' मैं आज से लगभग तीन वर्ष पूर्व देहरादून में ही छोड़ आया था। जहाँ तकरीबन जानने वाले मुझे 'मोहन' कहकर ही सम्बोधित करते थे।

मैंने जिज्ञासावश घुमाकर पीछे देखा तो रुकी हुई बस में बैठी एक युवती का हाथ मेरी और हिलता जान पड़ा। अरे ये सचमुच गीता ही है या मेरा भ्रम? भला गीता यहाँ कैसे हो सकती है? मेरा भ्रम ही है शायद! फिर भी मैंने चश्मा ठीक करते हुए, सिगरेट का एक ज़ोरदार कश लगाया। धुआँ आँखों के आस-पास वातावरण में तैरने लगा।

"मोहन जी" इस बीच उसने मुझे पुनः पुकारा।

अब तो संदेह की कोई गुंजाइश ही न रही। यक़ीन पुख़्ता हो गया कि ये मेरा भ्रम नहीं है वाकई बस में गीता ही बैठी है। गीता, यानी गीता नेगी। मेरे देहरादून प्रवास की साक्षी। यानी देहरादून में मेरी मकान मालकिन सरोजनी देवी की सबसे छोटी बेटी. अन्य दो लड़कियों में सबसे बड़ी मालती और मंझली ममता थी। दोनों का ही विवाह हो चुका था बल्कि ममता का विवाह तो मेरे ही सामने हुआ था। उन दिनों गीता बी.ए. में पढ़ रही थी और मैं उसे ट्यूशन पढाता था। उन

दिनों उसकी इच्छा थी कि बी.ए. करने के बाद बी.एड। करके, वह मेरी तरह किसी सरकारी स्कूल में टीचर बन जाए. उन दिनों मैं उनके परिवार का अटूट हिस्सा बन चुका था। उनके साथ ही उठना-बैठना, खाना-पीना हुआ करता था। मकान मालकिन सरोजनी देवी मुझे अपने बेटे जैसा ही मानती थी; क्योंकि उनके कोई बेटा न था। पति के निधन के बाद तीनों बेटियां ही उनके जीने का सहारा थीं। मैं भी सरोजनी देवी को मकान मालकिन से ज़्यादा माँ का दर्ज़ा देता था। मेरे आ जाने के बाद वह निश्चिंत होकर नौकरी कर रही थीं। यह नौकरी उन्हें अपने पति के स्थान पर मिली थी, उनके निधन के उपरान्त। उनकी ग़ैर हाज़िरी में घर की देखभाल का ज़िम्मा मेरे ऊपर था। घर में सबसे छोटी होने की वजह से, मैं गीता को 'छुटकी' कहता था, तो वह मुझे 'मोनू' कहकर चिढ़ाती थी। हम दोनों में एक अजीब-सा रिश्ता क़ायम हो गया था। हंसी-मज़ाक़, छेड़छाड़-गपशप, बात-बिन-बात एक-दूसरे को चिढ़ाना। चिढ़ना। हम दोनों की उम्र में बारह-तेरह साल का फ़र्क़ था, मगर हमारी दोस्ती ऐसी हो गई थी कि ये फर्क़ न तो कभी मुझे महसूस हुआ और न ही छुटकी को कभी लगा कि वह उम्र में मुझसे इतनी छोटी है। कभी-कभी हमारे बीच में बचकानी बहस भी हो जाती थी और हम दो-चार दिन तक बातचीत भी न करते थे। तब सरोजनी देवी ही मध्यस्ता करके, हमारे मध्य संधि करवाती थी। एक अजीब-सी कशिश, एक अजीब-सा आकर्षण था हम दोनों अनोखे दोस्तों के मध्य उन दिनों। जिसको कोई रिश्ता या नाम नहीं दिया जा सकता शायद! यदि कहीं महसूस किया जा सकता है तो इस रूप में कि वह आदर्श दोस्ती का रिश्ता था, जो विषय-वासना से दूर था।

सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा था। बस उन दिनों स्कूल में एक अप्रिय घटना घट गई थी। मेरी एक बेबाक टिप्पणी पर हमारे विद्यालय के प्रधानाचार्य मिस्टर अनिल मिश्रा मुझसे ख़फ़ा हो गए थे। जिसका परिणाम यह हुआ कि बात-बिन-बात, मौक़े-बे-मौक़े, वह मुझे नीचा दिखाने लगे। मेरा मन स्कूल से उचाट हो गया था। एक अजीब-सी वितृष्णा से मेरा हृदय भर उठा था। देहरादून के माहौल में अब मेरा दम घुटने लगा था। अगर मेरा तबादला न होता तो दो सूरतें मेरे पास थी और मैं उनमे से कोई एक सूरत इख़्तियार कर लेता। एक—या तो मैं इस्तीफ़ा दे देता; दो—या फिर मैं उस प्रिंसिपल के बच्चे का गला घोट देता। उन दिनों मुझे हर उस व्यक्ति से नफ़रत हो गई थी, जिसका नाम अनिल था। मुझे हर अनिल में उस ज़ालिम और कमीने मिश्रा का प्रतिबिंब नज़र आता था, जो दुर्भाग्य से हमारा बॉस (प्रिंसिपल) था।

मेरे तबादले में, मेरी सबसे ज़्यादा सहायता, मेरे स्टॉफ के एक अन्य अध्यापक महिपाल रावत ने की थी। जो नैनीडांडा (पौड़ी गढ़वाल) के मूल निवासी थे, मगर पिछले बीस वर्षों से देहरादून में ही रह रहे हैं। उन्होंने ही मुझे बताया कि वर्तमान शिक्षा मंत्री के पी.ए. उनके खासम-ख़ास रिश्तेदार हैं और यदि मैं चाहूँ तो मेरा तबादला वह नैनीडांडा के स्कूल में करा सकते हैं। दो करणों से मैंने तत्काल हामी भर दी। एक—मैं अनिल मिश्रा का चेहरा नहीं देखना चाहता था। दूसरे—आवास की कोई समस्या नहीं थी। नैनीडांडा में रावत जी का पुश्तैनी घर खाली पड़ा था। चार वर्ष पूर्व उनकी माताजी के निधन के उपरांत से ही उनके गांव वाले घर में ताला लगा हुआ था।

ये सब घटनाएँ क़रीब तीन वर्ष पूर्व की हैं अर्थात वर्तमान में अब भूत की इन घटनाओं की कोई प्रासंगिकता और सार्थकता नहीं रह गई थी। रह गई थी तो सिर्फ़ कुछ खट्टी-मीठी यादें। उन मीठी स्मृतियों में कुछ गीता और उसके परिवार से जुड़ी थीं; तो खट्टी अनिल मिश्रा और उसके

देहरादून वाले स्कूल से जुड़ी थीं। उन दिनों गीता बच्ची-सी लगती थी, मगर बस में से उसका झांकता चेहरा देखकर, आज लगा कि वह पहले से कुछ मैच्योर (परिपक्व) हो गई है। मैं इसी उधेड़बुन में खोया हुआ था कि यकायक गीता मेरे सामने अपना सूटकेस उठाए आ खडी हुई. उसके कंधे पर एक बैग भी झूल रहा था।

"हैलो! कहाँ खो गए? क्या पहचाना नही?" सूटकेस नीचे रखते हुए वह बोली।

"क्या बात कर रही हो छुटकी! भला मैं तुम्हें पहचानूंगा नहीं?" कहकर मैं मुस्कुरा दिया, "मगर तुम यहाँ कैसे?"

"गाँव में चाचा के लड़के की शादी में शामिल होने के लिए आई थी। मैं तो हफ़्तेभर से गढ़वाल में ही थी। आज ही वापिस देहरादून जा रही हूँ।" कहकर उसने कंधे पर लटका बैग भी सूटकेस के ऊपर रख दिया, "कि अचानक बस खराब हो गई..., दूसरी बस शायद दो घंटे बाद आएगी?"

"आज ही चली जाओगी, ऐसा कैसे हो सकता है?" मैंने बिगड़ते हुए कहा, "और हफ़्तेभर से तुम यहाँ थी, एक बार भी मुझसे मिलने का प्रयास नहीं किया!"

"समय ही नहीं मिल पाया, भाई की शादी में ही व्यस्त थी," गीता ने सफ़ाई दी, "फिर नैनीडांडा में किस तरफ रहते हो, इसका भी ठीक से कोई अंदाज़ा नहीं था मुझे?"

"नैनीडांडा के स्कूल से तो पता कर सकती थी!" मैंने नाराज़गी व्यक्त की, "वो पीछे देखो, स्कूल का बोर्ड चमक रहा है।"

"ओह! आय एम सॉरी।"

"सॉरी से काम नहीं चलेगा, आज तुम नैनीडांडा में ही रहोगी।"

"मगर?"

"मगर-वगर कुछ नहीं।" कहकर मैंने बैग और सूटकेस उठा लिए.

"आप बेकार ही तकलीफ़ कर रहे हैं।"

"मुझे कोई तकलीफ़ नहीं होगी, छुटकी जी." मैंने हँसते हुए कहा, "अच्छा, कभी मैं देहरादून आऊँगा और गेट से ही हाल-चाल पूछकर विदा हो जाऊँगा, तो कैसा लगेगा तुम्हें?"

"ज़ाहिर है, बहुत बुरा लगेगा।"

"तुम्हारी बेरूख़ी पर, ठीक ऐसा ही महसूस हो रहा है मुझे।"

"ठीक है हुज़ूर, तो आज हम आपकी मेहमान-नवाज़ी कबूल करते हैं।" गीता ने बिंदास अंदाज़ में कहा और हंस पड़ी।

"ये हुई न बात," प्रत्युत्तर में मैंने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा, "जहां मैं रहता हूँ, चार-पांच कमरों का मकान है, पूरा खाली। तुम्हारे लिए ऊपर का कमरा खुलवा दूंगा।"

"किराया क्या लोगे?" गीता ने मज़ाक़ में कहा।

"अकेले खाते-खाते बोरियत हो गई है, बस मेरे साथ खाना-पीना होगा।"

"अच्छा जी!"

"फिर पिछले तीन सालों से तुम्हारे हाथ की जली रोटियाँ भी तो नहीं खाई हैं।" मेरी इस टिप्पणी पर हम दोनों की हंसी छूट पड़ी और स्मृति में साथ गुज़ारे गए पुराने दिन हरे हो गए.

"मेहमान से रोटी पकवाओगे!"

"मेहमान अगर बेईमान हो, तो रोटी पकवाने में क्या हर्ज़ है?"

"अच्छा जी, क्या बेईमानी की हमने?"

"भूल गई, तुम मुझे क्या कहकर चिढ़ती थी, छुटकी?"

"याद है मुझे।"

"तो फिर मोनू कहकर क्यों नहीं चिढ़ाती मुझे?"

"तब मैं छोटी थी।"

"ओह! मैं तो भूल ही गया, इन तीन वर्षों में तुम काफी बड़ी हो गई हो! अब तो तुम्हें बड़की कहकर पुकारना पड़ेगा।" मैंने हँसते हुए कहा, "कैसा लगेगा, जब मैं कहूँगा तुम्हें, नमस्ते बड़की जी, या फिर गुड मॉर्निंग गीता जी, हा ... हा ... हा ..."

"अच्छा मोनू जी." गीता भी खिलखिलाकर हंसने लगी।

"हा, अब आई न लाइन पर।"

"एक बात तो है।"

"क्या?"

"तुम बिल्कुल भी नहीं बदले। अब भी वैसे ही हो छोटे बच्चे की तरह, जैसे देहरादून में थे।"
"सच!" मैंने एक अजीब-सी खुशी महसूस करते हुए कहा। एक टीस-सी उभर आई, "कहाँ खो गए वह दिन गीता ...?"

इस बीच एक मौन-सा उभर आया हम दोनों के मध्य।

"गीता ... ओह सॉरी छुटकी जी." मौन को भंग करते हुए मैंने पुनः कहा, "ज़रा एक मिनट रुको, सामने दुकानदार को सामान की लिस्ट दे दूँ; ताकि उसका लड़का समय पर सामान घर पहुंचा दे।"

"समनया, मास्टर जी (नमस्कार, मास्टर जी) ।"

"समनया ... समनया और कन छई गोविंदू, त्यरी दुकनदारी ठिक चलणी च (नमस्ते ... नमस्ते और कैसा है गोविन्द, तेरी दुकानदारी ठीक चल रही है) ।" मैने स्थानीय बोलचाल की भाषा (गढ़वाली) में कहा।

"सब देवी भगवतीक कृपा च (सब देवी भगवती की कृपा है) ।"

"अच्छा गोविंद, इन कैरी कि ये लिस्ट मा जदगा आयटम लिख्यां छन, तू अपुर बेटा, देबूक हती जल्द-से-जल्द म्यार घोरम भिज्य दे (अच्छा गोविन्द, ऐसा करना कि इस लिस्ट में जितनी भी आइटम लिखी हैं, तू अपने बेटे, देबू के हाथ जल्द-से-जल्द मेरे घर भिजवा देना) ।" मेरे मुंह से प्योर (शुद्ध) गढ़वाली सुनकर गीता हतप्रभ-सी खड़ी मुझे देखती रह गई. शायद वह यह विश्वास कर पाने को तैयार न थी कि मैं इतनी अच्छी गढ़वाली कैसे बोल सकता हूँ?

"मास्टर जी, देबू तो ब्याल बटी, भर्ती बान लेन्सीडॉन ग्यूं च। ख़ैर आज दिनक गाड़ी म ऐ जाल ... और कुई सेवा (मास्टरजी, देबू तो कल ही, भर्ती के इरादे से लेन्सीडॉन गया हुआ है। ख़ैर आज दिन की गाड़ी से वापिस आ जाएगा ... और कोई सेवा) ?" दुकानदार ने हाथ जोड़कर औपचारिकतावश पूछा।

"न बस इदगा (इतना) ही कैर (कर) दे।" मैंने आभार व्यक्त किया।

"या दगड म को च (ये साथ में कौन है) ?" दुकानदार का इशारा गीता की तरफ़ था।

"हमारी रिश्तेदार है।" मैंने अटैची दूसरे हाथ में पकड़ते हुए कहा।

"अच्छा मास्टर जी." गोविन्द ने सर हिलाया।

"चलो गीता।" कहकर हमने गांव की राह पकड़ी। हम पक्की सड़क से कच्ची पगडंडी पर उतर आए.

"क्या बात है, आप तो गढ़वाल में रहकर, पूरे गढ़वाली हो गए हैं।" गीता ने संभलकर कदम रखते हुए कहा, क्योंकि रास्ते की ढलान नीचे को थी।

"आधा गढ़वाली तो मैं, तुम्हारे घर में रहकर ही बन गया था। शेष स्थानीय लोगों से गढ़वाली में निरन्तर बातचीत करते रहने से गढ़वाली सीखने में काफ़ी सहायता मिली। फिर कुछेक पत्र-पत्रिकाओं और गढ़वाली साहित्य को पढ़ने से भी भाषा में निखार आया। सचमुच गढ़वाली जान लेने के बाद अहसास हुआ कि हिन्दी का सबसे खूबसूरत पहाड़ी रूप है यह।" मैने मुक्तकंठ से गढ़वाली बोली की प्रशंसा की, "बड़ी मीठी बोली है गढ़वाली।"

"ये गाँव कितनी दूर है अभी?" गीता ने जम्हाई लेते हुए पूछा।

"यही सामने ही तो है इस पहाड़ पीछे, बस एक लतड़ाक (latdaak) और।" मेरे मुंह से लतडाक सुनकर गीता को हंसी आ गई.

"जानते हो, एक लतड़ाक कितना होता है?"

"चाहे, दो कदम चलो या पांच-दस मील। यहाँ के भोले-भाले ग्रामीण उसे एक लतड़ाक ही बोलते हैं। इस संदर्भ में एक क़िस्सा है, कहो तो सुनाऊँ?" मैंने गीता की तरफ़ देखकर कहा।

"हाँ-हाँ, सुनाओ."

"जानती हो, एक बार एक अंग्रेज़ पर्यटक गढ़वाल में घूमने की दृष्टि से आया। उसके साथ जो गढ़वाली गाइड था, वह उससे निरन्तर पूछता रहा—और कितना चलना है भाई? इस बात पार् वह गाइड कहता रहा—बस एक लतड़ाक और बस एक लतड़ाक," कहकर मैने लम्बी सांस ली, "और जानती हो, वह गाइड उस अंग्रेज़ को पूरा दिन घुमाता रहा। आख़िरकार थक-हारकर उस विदेशी पर्यटक ने अपने कान पकड़ लिए और बोला—'बाप रे बाप, ये गढ़वालियों का एक लतड़ाक तो कभी ख़त्म नहीं होता!'" क़िस्सा सुनकर हम दोनों ही हँसते-हँसते दोहरे हो गए.

"अच्छा, ये पहाड़ों की ज़िन्दगी तुम्हें कैसी लगी?"

"पहाड़ पर्यटन की दृष्टि से घूमने के लिए तो अच्छे हैं, मगर यहाँ ज़िन्दगी बितानी पड़े, तो बहुत कठिन है।" एक अजीब-सी थकावट को अपने भीतर महसूस करते हुए मैंने कहा।

"तो फिर वापिस देहरादून क्यों नहीं लौट आए?" शिकायती अंदाज़ में गीता ने पूछा।

"ख़ैर, अब ऐसी कोई बात नहीं। पहाड़ अब तो काफ़ी अच्छे लगते हैं। यहाँ के लोग; यहाँ की आबो-हवा; शहरों में वह बात कहां? यहाँ के रहन-सहन में बड़ी सादगी है और दिखावा नहीं है, जो मुझे बहुत पसंद है।" मैंने बड़ी आत्मियता से कहा।

"नैनीडांडा तो काफ़ी ऊंचाई पर लगता है।" सड़क से नीचे खाई की तरफ़ देखते हुए गीता बोली।

"हाँ, समुद्रतल से इसकी ऊंचाई कोई दो हज़ार फ़ीट के क़रीब है। इसकी चोटी दूर से ही नज़र आती है। अब तो दूरदर्शन का टीवी टावर भी यहाँ लगा है। जो कि दूर से ही किसी मुकुट की भांति नज़र आता है।"

"गाँव आकर तुमने हमे ख़त क्यों नहीं लिखे?" स्वर में नाराज़गी थी।

"क्या करूं, ख़त तो कई लिखे, मगर उन्हें डाक में डालने की हिम्मत न जुटा सका। सोचा क्या है ऐसा, जो लिखा जा सके. कुछ भी तो ऐसा ख़ास नहीं घट रहा था यहाँ, जो ख़त का विषय बन सके. एकदम निराशावादी हो गया था, मैं उन दिनों। ऐसा लग रहा था, जैसे यकायक हरी-भरी डाल को काटकर जड़हीन कर दिया गया हो और उसके सूखे तने को सड़ने के लिए इन निर्जन पहाड़ों में फैंक दिया गया हो।" कच्ची-पक्की, टेडी-मेड़ी, ऊबड़-खाबड़ संकीर्ण पगडण्डियों से होते हुए हम दोनों बातों में गुम बेख़बर से चलते रहे। सामने एक जगह हमें किनारे होना पड़ा, जब एक चरवाह भेड़-बकरियों को लिए उसी तंग रास्ते से आ गया। वह कोई पहाड़ी गीत गुनगुना रहा था। "मास्टरजी नमस्कार।" चरवाह बोला।

"और श्यामू कन छई (और श्यामू कैसा है) ?" मैंने जवाब में कहा।

"बस दिन कटेणा छिन (बस दिन कट रहे हैं) ।" वह चरवाह मवेशियों को हांकता हुआ आगे बढ़ गया।

"सुन श्यामू?" मैने पीछे से पुकारा, "शाम को एक किलो दूध भिजवा दियो।"

"अच्छा मास्टरजी. " कहकर वह चरवाह अपनी धुन में गुनगुनाता हुआ, मवेशियों को हांकता हुआ, आगे बढ गया।

"कौन था ये?" कुछ कदम चलने पर गीता ने पूछा।

"गाँव का ही है। ज़रा संभलकर चलना यहाँ पे, फिसलोगी तो तगड़ी चोट लगेगी," मैंने टेड़े-मेढे पत्थरों पर संभल के क़दम रखते हुए गीता को सतर्क करने की दृष्टि से कहा, "बड़ी दर्दनाक कहानी है बेचारे की। कभी इस इलाके का माना हुआ ठेकेदार हुआ करता था मगर आज गाय-बकरियाँ चरा रहा है।"

"क्यों क्या हुआ था इसके साथ?"

"वो गढ़वाल में कहावत है न, 'स्वरा के का नी हुंदी।'"

"मतलब?"

"मतलब, 'सगे किसी के नहीं होते।' श्यामू के अपने भाइयों ने ही इसे बरबाद कर दिया। इसकी जन्मभर की पूँजी हड़प ली। जिन भाइयों की परवरिश, पढ़ाई-लिखाई, शादी-ब्याह आदि सारे काम इसने खुद अपने हाथों से किए. उन्हें मकान और दुकान भी दिलवाए. उन्हीं भाइयों ने एक दिन नशे में इससे हस्ताक्षर करवा के इसकी सारी जमा-पूंजी अपने नाम करवा ली; और इस पर प्राण घातक प्रहार करके, इसे मरा समझके, खाई में भी फैंक दिया था।"

"अच्छा फिर!"

"फिर क्या? शायद इसके भाग में अभी और नरक भोगना लिखा था। इसलिये ये खाई में गिरकर भी ज़िंदा बच गया। अब ग़रीबी के आलम में इसे अपनी पत्नी की बातें याद आती हैं। जो इसे समय-समय पर सचेत करती रहती थी।"

"क्या कहती थी वो?"

"वक़्त रहते संभल जाओ, वरना ये भाई-बंधु तुम्हें कहीं का नहीं छोड़ेंगे। तब श्यामू अपनी पत्नी को दारू के नशे में पीटते हुए कहता था—साली तू जलती है मेरे भाइयों से। दरार डालना चाहती है हमारे बीच। तू नहीं चाहती कि हम सारे भाई-बंधू मिल-जुलकर रहें।"

"अच्छा।"

"और देख लो गीता, आज ये सगे भाई जन्म-जन्म के बैरी बने हुए हैं।"

"श्यामू ने पुलिस में शिकायत क्यों नहीं की?"

"बड़ा भाई होने के नाते वह आज भी यही मानता है कि अपने भाइयों को मैं अच्छे संस्कार न दे सका। शायद मुझमें ही कुछ कमी थी, जो भाइयों ने मेरे साथ ऐसा सलुक किया। मैं तो वैसे ही उन्हें सब कुछ दे देता, अगर वे मुझसे कहकर देखते। अक्सर श्यामू मुझसे कहता है कि मास्टरजी, मुझे बस यही दुख है कि एक ही माँ का दूध भी हम भाइयों को एक क्यों न रख सका?"

"ऐसे महान किरदार भी रहते हैं इन पहाड़ों में।" गीत श्यामू की महानता के आगे नतमस्तक थी।

"लो बातचीत में कुछ पता ही नहीं चला कि गांव कब आ गया?" मैंने इशारा किया, "वो रहा बिल्कुल उंगली की सीध में हमारा ग़रीबख़ाना।"

"घर तो बड़ा आलीशान है, पूरे गाँव में अलग चमक रहा है।"

"अब तो पहाड़ों में भी लैंटर के घरों का चलन बढ़ने लगा है। पहले पत्थर-मिट्टी के मकान हुआ करते थे। जिनकी छत पहाड़ी पत्थरों को जोड़-जोड़ कर बनाई जाती थी।" कुछ ही देर में हम घर के अहाते में प्रवेश कर गए. सामान के वज़न से मुझे कुछ थकावट-सी हो गई थी। अत: गीता यकायक बोल उठी, "उम्र का तक़ाज़ा है, मास्टरजी."

"अभी थकी हुई हालत में भी, मैं तुमको कंधे पर उठाकर वापिस नैनीडांडा छोड़ सकता हूँ छुटकी।" और हँसते हुए हमने कक्ष में प्रवेश किया।

०००

पर्वतों में सूर्यास्त का दृश्य हृदय को छू लेने वाला होता है। डूबते सूरज की लाल किरणें ऐसे प्रतीत होती हैं, जैसे सारी संध्या एक लाल चादर में सिमट गई हो। उस वक्त पहाड़ों की चोटियों, वृक्षों, नदियों, झरनों आदि समस्त प्रकृति का सौंदर्य और भी निखर उठता है। ऐसा जान पड़ता है जैसे ब्रह्मा ने सृष्टि की संरचना ऐसे ही किसी क्षण में की होगी। रोज़ ही ऐसे दृश्य उत्पन्न होते थे, मगर इतने मनोहरी मुझे कभी न लगे, जितना आज जान पड रहा था।

ऐसे कई विचार चाय बनाते वक्त मेरे ज़हन में उठ रहे थे। कलाई पर दृष्टि पड़ी तो घड़ी की सुइयाँ छह बजा रही थी और सैकेंड की सुई अपनी रफ़्तार से भाग रही थी। मन हुआ सुइयों को पकड़कर समय को यहीं रोक दूँ। चाय कपों में उड़ेलकर मैं उस कक्ष में पहुंचा, जहाँ गीता बेख़बर-सी सोई हुई थी। नींद में उसका सौंदर्य और भी खिल उठा था। अपलक, मैं उसे यूँ ही देखता रहा।

घर में क़दम रखते ही मैंने गीता को खाना परोसा, जो मैं सुबह ही बनाकर गया था। हालांकि मैं ताज़ा भोजन बनाना चाहता था मगर सफ़र की थकावट ने गीता को काफ़ी थका दिया था और उसने बड़े अलसाये स्वर में कहा था, "जो कुछ भी तैयार है, उसी से काम चल जाएगा, इस वक्त तो ज़ोरों की नींद आ रही है।" खा चुकने के उपरांत लगभग दो-ढाई बजे से गीता अब तक सो रही थी। इस बीच श्यामू साढ़े पांच बजे के आस-पास गाय का किलो भर दूध दे गया था। शुद्ध एवं

ताज़ा। ऐसा दूध शहरों में कहां? उसके बाद मैं चाय बनाने में जुट गया था और खीर बनाने के उद्देश्य से सूप में कुछ चावल भी मैंने निकाल लिए थे।

"गीता मैडम, अब उठ भी जाओ, बाक़ी नींद रात में पूरी कर लेना।"

"ओह!" कहकर गीता ने जम्हाई ली और आँखें मलते हुए बोली, "काफ़ी गहरी नींद आ गई थी, कितना समय हो गया?"

"मात्र साढ़े तीन-चार घंटे से सो रही हो।" मैंने चाय का प्याला थमाते हुए कहा और गीता मुस्करा दी।

"ओह गॉड! अब जाकर सर थोड़ा हलका हुआ है।" कहकर गीता भी चाय की चुस्की लेने लगी।

"चाय के साथ-साथ संगीत का भी आनन्द लो।" और मैंने डैक स्विच ऑन कर दिया। नरेंद्र सिंह नेगी की आवाज़ में प्रसिद्ध गढ़वाली फ़िल्म 'घरजवै' का सदाबहार गाना बज उठा—'*तू दिख्यान्दी जन ज्यूनाली सच्ची त्यारा सौंउ* (तू दिखती है जैसे चाँद, सच तेरी कसम) …'

"किसकी आवाज़ है ये?"

"मैडम, गढ़वाल के मुहम्मद रफ़ी को कौन नहीं जानता?"

"तो नेगी जी आपको भी पसंद हैं।"

"बेशक़!" कहकर मैने चाय की चुस्की ली, "एक ही तो क्लासिक गायक है, पूरे गढ़वाल में।"

"ख़ैर और सुनाओ अपनी दास्तान।" कहकर मैंने जेब टटोली और अगले क्षण सिगरेट सुलगाकर माचिस और सिगरेट का पैकेट मेज़ के ऊपर रख दिए. सिगरेट का कश लगाने के बाद चाय का गिलास पुनः हाथ में ले लिया, "अरे मैं तो पूछना ही भूल गया, मम्मी जी कैसी हैं?"

"ठीक हैं, मगर कभी-कभार वी.पी. हाई रहता है।"

"क्या डॉक्टर को नहीं दिखाते?"

"दवाइयाँ चलती रहती हैं, मगर डॉक्टर कहते हैं कि ये बढ़ती उम्र का नतीज़ा है। घबराने की बात नहीं है। व्यर्थ के चिंता-फ़िक्र, तनाव न पाला करें, सब ठीक हो जाएगा।"

"मालती और ममता?"

"दीदियाँ भी ठीक हैं। मालती दीदी के इसी बैशाख में लड़का हुआ है जबकि ममता दीदी की एक लड़की है। दोनों अक्सर हमें मिलने आती रहती हैं।"

"और वह प्यारा-सा जैकी।"

"उसे मरे तो डेढ़ साल हो गए."

"अरे कैसे मरा?"

"एक दिन उसकी चेन खुली रह गई," गीता को जैसे वह घटना याद हो आई, "बेचारा सड़क की तरफ तेज़ रफ़्तार ट्रक की चपेट में आ गया और … ऑन द स्पॉट ही।"

"काश! मैं उसे अपने साथ यहाँ पहाड़ों में ले आता।" मेरे सामने उस नटखट पॉमेरियन डॉग का चेहरा घूम उठा। जो किसी मासूम बच्चे की तरफ ही जान पड़ता था, "इस तरह मेरा अकेलापन भी कट जाता और वह मरने से भी बच जाता।"

"भला होनी को कौन ताल सकता है?" मौत पर किसका वश है? "गीता के स्वर में वेदना थी और अर्थ में दार्शनिकता," हमसे तो दो दिन तक कुछ खाया-पिया भी नहीं गया। "

"ऐसा होना स्वाभाविक है, वह था भी तो कितना प्यारा, नटखट। कहने को कुत्ता था मगर बिलकुल परिवार के एक सदस्य की तरह ही था।" इस बीच एक छोटी-सी चुप्पी और बेमन से चाय पीते हम दोनों। कुछ ही क्षणों बाद ख़ाली प्याले मेज़ की शोभा बढ़ा रहे थे।

"शायद तुम ठीक कहती हो गीता। मौत के आगे हम सभी बेबस हैं। पिछले साल मेरी माताजी का भी स्वर्गवास हो गया।"

"अरे कैसे? क्या हुआ था उन्हें?"

"कैंसर!"

"ओह! कम-से-कम एक ख़त लिखकर हमें तो बता देते।" गीता ने सहानुभूति दर्शायी।

"अंतिम समय में उनकी ज़ुबान पर मेरा ही नाम था। दुर्भाग्य से मैं खुद भी उनके अंतिम दर्शन न कर सका। मेरे पहुँचने से पूर्व ही ।" आँखों के कोरों में उभर आये आँसुओं को मैंने तुरन्त ही हाथों से पोंछ लिया।

"बड़ी तकलीफ़ होती है, अपनों के गुज़र जाने से।" गीता के स्वर में आत्मीयता थी।

"कुछ लोग मरकर भी नहीं मरते ... यादों की शक्ल में ज़िंदा रहते हैं और कुछ लोग जीते जी भी, मरे हुए समान हैं क्योंकि उन्हें कोई याद नहीं करता!"

"ऐसा क्यों कहते हो?"

"अक्सर तन्हाई में ये ख़्याल आता है मुझे!"

"ये एकान्त भी तो तुमने खुद ही चुना है अपने वास्ते। हम तो आज भी तुम्हें काफ़ी मिस करते हैं।"

"जानकर अच्छा लगा मुझे, मैं भी तुम लोगों को भुला नहीं पाया हूँ।"

"तभी तो काफ़ी ख़त लिखे हैं आपने?"

"वैसे माता जी की एक अन्तिम इच्छा थी; जो पूरी न हो सकी।" मैंने धुआँ उड़ाते हुए बंद आँखों से कहा।

"क्या?"

"वो चाहती थी, उनके जीते जी मेरा घर-परिवार बस जाता।"

"तो तुमने उनका कहा, मान क्यों नहीं लिया?"

"ऐसे ही इच्छा ही नहीं हुई," अपने भीतर एक अजीब-सा अधूरापन महसूस करते हुए मैंने बेमन से कहा, "सच कहूँ तो मुझे इस एकान्त और तन्हाई में जीने की आदत-सी हो गई है।"

"सच ये है या कुछ और...?" कहकर गीता ने मुझे चौंका-सा दिया।

"क्या?" मैंने मंद-मंद मुस्कुराते हुए कहा।

"इधर देखो ।" थोड़ा और क़रीब आकर गीता मेरी आँखों में कुछ पढ़ने की कोशिश करने लगी।

"मैं कुछ समझा नहीं? ऐसे क्या देख रही हो मेरी आँखों में?" मैं इस नए खेल के लिए तैयार था, "तो फिर क्या लगा तुम्हें?"

"तुम जैसे बोरिंग आदमी से इश्क़ करके कौन अपने भाग फोड़ेगी!" गीता ने मज़ाकिया अंदाज़ में कहा।

"अच्छा आज हम बोरिंग हो गए. अभी तुम्हारी चुटिया पकड़ कर कमरे के दस चक्कर लगवा देंगे छुटकी।" मैंने भी मज़ाक़ में कहा और ग़मगीन होते माहौल में एक बार फिर खुशनुमा पल तैर गए.

"तुम तो बुरा मान गए मोनू।"

"नहीं-नहीं, वर्षों बाद ऐसा सुनते और कहते हुए बड़ा अच्छा लग रहा है! मुझे लग रहा है कि मैं तुम्हारे देहरादून वाले घर में बैठा तुमसे दिल्लगी कर रहा हूँ। क्या दिन थे, खाते-पीते, उठते-बैठते कैसे बच्चों की तरफ लड़ते थे हम दोनों।"

"हाँ, मुझे भी ऐसा ही लग रहा है! लेकिन मेन (मुख्य) बात तो वहीँ की वहीँ रह गई."

"क्या?"

"तुम्हारा वाकई कहीं कोई अफ़ेयर है क्या?"

"सच कहूँ या झूठ?"

"झूठ!"

"तो सुनो, मेरा अफ़ेयर तो तुमसे ही था!"

"हा...हा...हा..., व्हाट अ जोक?" गीता ठहाका लगाते हुए बोली, "अब सच भी बता दो, कहीं मरे ख़ुशी के, मैं आज ख़ुदकुशी न कर लूँ?"

"अभी कुछ देर पहले तुम ही तो कह रही थी!"

"क्या?"

"कि मुझ जैसे बोरिंग आदमी से इश्क़ करके कौन अपने भाग फोड़ेगी!" अब ठहाका लगाने की बारी मेरी थी। गीता ने भी हंसी में सहयोग दिया।

"मैं तो सीरियस हो गयी थी!" गीता ने स्वर बदलकर मेरी नक़ल करते हुए कहा और पुनः तेज़-तेज़ हंसने लगी।

"बहुत ख़ूब तुम इतनी अच्छी नक़ल कर लेती हो, फ़िल्मों में ट्राई क्यों नहीं करती!" मैं भी हँसते हुए बोला।

"मुझे फ़िल्मों में लेकर कौन अपने भाग फोड़ेगा। खैर छोडो..." गीता ने बात का विषय बदलते हुए कहा, "ये बताओ, आज खाने में क्या बनाना है?"

"जो कुछ भी आप खिला दो मैडम।"

"वाह मेजबान खुद मेहमान से पूछ रहा है, क्या मेजबानी है?"

"वैसे मैंने खीर के लिए चावल निकाल लिए हैं। वहाँ सूप में रखे हैं।"

"गुड!"

"गोविन्द का लड़का भी अभी तक सामान लेकर नहीं आया। दिन की गाडी तो कबकी निकल गई है।" मैंने ख़ाली प्याले को उठाते हुए कहा।

"लाओ कप मुझे दे दो।"

"अरे नहीं, आप मेहमान हो छुटकी जी, प्याले मैं धोऊंगा।"

"मास्टरजी होकर आप मेरे सामने कप धोते हुए अच्छे लगेंगे क्या?" कहकर गीता ने जूते कप जबरन मेरे हाथों से छीन लिए. उसका ये व्यवहार मेरी समझ से परे था मगर हृदय को अत्यन्त सुकून देने वाला था।

"चलो तब तक मैं अपना स्कूल का काम भी निपटा लूंगा।" कहकर मैंने बैग निकाल लिया। जिसमे बच्चों की प्रोग्रेस रिपोर्ट के बण्डल पड़े थे। इस बीच गीता रसोई में चली गई.

"स्कूल लाइफ़ में बस यही दो-तीन काम मुझे ख़राब लगते हैं। एक—बच्चों को डांटना या पीटना। दो—पेपर जांचते हुए सही नम्बर न दे पाना। तीन—प्रत्येक विद्यार्थी की सालाना रिपोर्ट बनाना या छोटी कक्षाओं के प्रश्नपत्र तैयार करना। कक्ष से ही मैंने ऊँचे स्वर में गीता को ये सब सुनाते हुए कहा।

"मैं समझी नहीं मास्टर जी." सामने रसोईघर से बर्तन धोते हुए गीता बोली। दिनभर के अन्य जूठे बर्तन भी पास में पड़े हुए थे।

"बच्चों के डाँटने और पीटने पर मेरे मन एक अपराध बोध की-सी भावना घर करने लगती है। लगता है, जैसे मैं खुद गुनहगार हूँ। मैं उन्हें ठीक से समझा नहीं पाया हूँ। तुम्हें तो मालूम ही है, दिल्ली में प्रिंसिपल अनिल मिश्रा से मेरी अनबन के बारे में।"

"हाँ, हल्का-सा याद है।" सामने रसोईघर से ही गीता ने उत्तर दिया।

"उन दिनों एक विद्यार्थी को मैंने इतना पीटा था कि बेचारा बेहोश हो गया था। उसका कसूर इतना ही था कि उनसे नाम 'अनिल' था। दो बोतल गुलूकोस चढाने के बाद जब उसे होश आया, तब मैंने प्रण किया कि अब मैं बच्चों को नहीं पीटूंगा। मगर आज भी कुछ ऐसे ढीठ और ज़िद्दी किस्म के बच्चे मिलते हैं कि उन पर डण्डे का प्रयोग उचित हो जाता है। फिर भी पीटते समय मैं एहतियात ज़रूर बरतता हूँ, कहीं किसी को ज़्यादा चोट न आ जाये।" कहते-कहते मैंने दो-तीन विद्यार्थियों की प्रोग्रेस रिपोर्ट तैयार कर डाली। इतनी देर में गीता भी बर्तन धोकर कक्ष में प्रवेश कर चुकी थी।

"बर्तन धोकर आख़िर तुमने मेरे सिर पर पाप चढ़ा ही दिया।" मैंने गीता की तरफ़ देखते हुए कहा। फिर अगले रिपोर्ट कार्ड पर एक सरसरी निगाह डाली।

"वैसे इस पाप का प्रायश्चित हो सकता है।"

"वो कैसे?"

"रात के बर्तन धोकर।"

"बहुत ख़ूब काफ़ी हाज़िर-जवाब हो गई हो।"

"क्या करें, खरबूजे को देखकर ही खरबूजा रंग बदलता है?" हंसी-मज़ाक़ से वातावरण काफ़ी खुशनुमा हो गया था गीता ने खुद को वर्तमान परिस्थितियों में ऐसे ढाल लिया था कि मेरी स्मृति में दिल्ली के वे दिन पुनः हरे हो गए.

"ये क्या कर रहे हो?" रोकते हुए पूछा।

"फिलहाल मगज़मारी कर रहा हूँ ... मैंने अपना सर धुनते हुए कहा," कभी टीचर मत बनना, सबसे ख़राब ज़िंदगी है टीचरों की। "

"कैसे?"

"परीक्षा के दिनों में पेपर जांचना, मेरे लिए भी एक इम्तिहान की घडी होती है। मुझे आश्चर्य होता है जब मैं किसी बच्चे को पासिंग मार्कस नहीं दे पाता हूँ। उस वक्त बाल नोचने का मन करता है और खीज मिटाने के लिए मैं पूरा चेन-स्मोकर हो जाता हूँ। एक दिन में सिगरेट की आठ-दस डिब्बियां फूंक डालता हूँ। कई बार तो मन करता है कि फाड़ दूँ ये उत्तरपुस्तिकाएं और पड़ा रहूँ

सन्यासी की तरह समाधि या योग-ध्यान की मुद्रा में, किन्तु कर्म से भागना मनुष्य के वशीभूत नहीं है शायद इसी द्वंद्व का नाम जीवन है, जो मृत्यु तक एक संघर्ष है। फिर मृत्यु के उपरान्त एक असीम शांति और महामोक्ष; जबकि जीवन से पलायन कायरता है। यही सब आदि-अनादि भाव पेपर जांचते समय ह्रदय से स्फुटित होते हैं।" कहकर मुझे राहत-सी महसूस हुई. शेष बेचैनी को मैंने सिगरेट के धुएँ में उडा दिया था। इस बीच गीता बड़ी एकाग्राचित होकर मुझे सुन रही थी।

"कुछ यही हाल विद्यार्थियों की सालाना रिपोर्ट बनाते या प्रश्नपत्र तैयार करते समय भी रहता है इसलिए इन पर मैं ज़्यादा मेहनत नहीं करता हूँ कुछेक रटे-रटाये शब्द मैं हर सालाना रिपोर्ट में दोहरा देता हूँ। मसलन—'पढाई में ठीक है, लेकिन समझता देर से है' या 'बहुत अच्छा है, थोड़ा और मेहनत की ज़रूरत है' या उम्मीद से कहीं बेहतरीन, होनहार'फिर जैसे-जैसे इस काम में बोरियत होने लगती है, एक-एक लाइन की रिपोर्ट एक-एक शब्द में बदल जाती है। मसलन—' संतोषजनक'...' उत्तम'...' कमज़ोर'...' होनहार' आदि से ही काम चलाना पड़ता है।"

"प्रश्नपत्र तैयार करते समय सिरदर्दी और भी बढ़ जाती है। पहले पूरी किताबें पढ़ो। फिर उसमे से प्रश्नपत्र तैयार करो। जगह-जगह काटो-पीटो बदलाव करो। सचमुच ये प्रक्रियाएं मुझे अजीब-सी थकावट और परेशानी से भर देने वाली होती है। एक एकांकी जीवन व्यतीत करते हुए मेरा दम-सा घुटने लगा है और उस पर ये व्यर्थ की सिरदर्दी, ईश्वर किसी को टीचर न बनाए." मेरी बातें सुनकर गीता की हंसी छूट पड़ी।

"मैडम बड़ी मगज़मारी है इन कामों में। सुकून छीन जाता है और नींद उड़ जाती है।"

"अच्छा।"

"मेरी हालत तो मोहन राकेश के उपन्यास 'न आने वाला कल' के मास्टर जैसी हो गई है, जो इस्तीफ़ा देकर सब फ़िक्रों से निजात पा लेना चाहता है। मैंने व्यंग्यात्मक लहज़े में कहा," मुझमे और उस मास्टर में यही फ़र्क है कि वह शादीशुदा था और मैं कुंवारा ही मर रहा हूँ। "

"क्या बात है?" गीता खुलकर हंसी.

"मैडम आपको हंसी आ रही है, मेरी व्यथा सुनकर।"

"नहीं, वह बात नहीं है, आपके कहने के अंदाज़ पर हंसी आ रही है।"

"मास्टरजी." बाहर से किसी ने पुकारा।

"ये तो देबू की आवाज़ है।" मैंने स्वर को पहचानते हुए कहा।

"कौन देबू?" गीता ने पूछा।

"दुकानदार गोविन्द का लड़का, शायद सामान लेकर आया है।" मैंने गीता को बताया, फिर स्वर को थोड़ा ऊँचा करके कहा, "देबू, बेटा अंदर आ जाओ."

"मास्टर जी नमस्कार, ये रहा आपका सामान।"

"दो बजे वाली गाड़ी में आये क्या?"

"हाँ, मास्टरजी." कहकर देबू ने सामन रख दिया और गीता को भी 'नमस्ते' किया।

"और क्या परिणाम रहा, लैन्सीडॉन की यात्रा का, फौज में भर्ती हुए कि नहीं?"

"कहाँ मास्टरजी सब जगह सिफारशी टट्टुओं की भरमार है, गरीबों को कौन पूछे?" देबू के स्वर में सिस्टम के ख़िलाफ़ आक्रोश था, "यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैंने इस देश में जन्म लिया। जहाँ बेरोज़गारों की भरमार है। एक बात कहूँ मास्टर जी."

"क्या?"

"मास्टरजी, आग लगा देनी चाहिए इस शिक्षानीति को जो हमें जीने लायक एक ढंग की नौकरी भी नहीं दे सकती।"

"हाँ बेटा, तुम्हारा आक्रोश है। वाकई हमारे देश में बेरोज़गारी की समस्या बड़ी विकट है, पर इंसान को हार नहीं माननी चाहिए. अपना धैर्य और संयम नहीं खोना चाहिए. मैं भी स्वीकार करता हूँ कि हमारी शिक्षानीति में अनेक दोष हैं, पर इन्हें दरुस्त करने का प्रयास भी हमें ही करना होगा। अकेले सरकार को दोष देना ग़लत होगा। हमें शिक्षा के साथ-साथ स्वरोज़गार की भावना भी विद्यार्थी काल से ही नौजवानों में जागृत करनी चाहिए."

"क्या उन नेताओं को सजा नहीं मिलनी चाहिए जो अपने घोषणा-पत्र में ग़रीबी-बेरोज़गारी उन्मूलन के नारे उछालते हैं और फिर हमारे ही वोटों से राजपाट पाकर हमारा उपहास उड़ाते हैं? क्या नैतिक तौर पर इन्हें सत्ता में बने रहने का अधिकार है मास्टरजी?"

"बेटा नैतिक तौर पर तो हमें भी मास्टरगिरी से इस्तीफ़ा दे चाहिए क्योंकि इस दोषपूर्ण शिक्षातंत्र का भाग तो हम भी हैं। तुम्हें उज्ज्वल भविष्य देने की जगह इस बेरोज़गारी के अँधेरे कुएं में धकेलने के लिए कुछ तो दोषी हम भी हैं।"

"नहीं मास्टरजी, मेरे कहने का यह अर्थ नहीं था।"

"बैठो चाय पियोगे?"

"नहीं मास्टरजी, पिताजी ने कहा था जल्दी आना। वहाँ दुकान पर कोई नहीं है।" कहकर देबू ने विदा ली।

"बड़ा आक्रोशी लड़का है।" देबू के जाने के बाद गीता ने उसके बारे में राय दी।

"मज़ा आ जाता है इसके साथ बातचीत करके. कई बार हमारे बीच अनेक रोमांचक बहस हुई हैं।" मैंने उत्साहपूर्वक कहा।

"किस विषय में?"

"लगभग हर विषय पर हम बहस कर चुके हैं। जैसे अध्यात्म, राजनीति, समाज, साहित्य, नैतिकता, अनैतिकता, जीवन-मूल्य, सांस्कृतिक-मूल्य, प्राचीन संस्कृति, ब्रह्माण्ड और उसके रहस्य आदि-आदि विषय। कुछ भी तो अछूता नहीं रहा हमारे मध्य। प्राय: वर्तमान घटनाओं और राजनीति पर तो हमारी बहस अक्सर होती ही रहती है। बाज़ार में तो कई बार मज़मा तक लग जाता है हमें सुनने के लिए. कभी चायवाले की दुकान पर तो कभी खुद देबू की दुकान पर भी हम दोनों अक्सर बहस करते रहते हैं।"

"क्या बोर नहीं होते?"

"नहीं, समय काटने के लिए तो यह अच्छा साधन है। कई बार देबू की अपने पिता से अनबन हो जाती है तो वह मेरे घर पर ही रात गुज़ार लेता है। उस दिन तो फिर सारी रात बहसबाज़ी में ही बीतती है।"

"अच्छा काफ़ी गहरी दोस्ती है आप दोनों में।"

हाँ, हम दोनों दोस्त पहले हैं, शिष्य और गुरु। मैंने देबू और अपने रिश्ते के मार्फ़त कहा और मेरी नज़र दीवार घड़ी पर पड़ी, तो पाया साढ़े सात बज रहे थे, "ओह इस बातचीत के चक्कर में कितना समय बीत गया है?"

"क्या फ़र्क़ पड़ता है?"

"फ़र्क़?" बड़ी हैरानी के साथ मैंने गीता को देखा और कहा, "अभी खाना भी पकाना है मैडम जी!"

"वो मैं बना लूंगी ... बस आप मेहरबानी करके तब तक स्कूल का ये काम निपटा लीजिए." गीता ने हाथ जोड़ते हुए कहा और कृपया ये बताइए ऊपर के कमरे की चाबियाँ कहाँ हैं? "

"अरे नहीं, स्कूल का ये काम तो आधे-एक घंटे में रात को भी हो जायेगा। तब तक मैं खुद ही कमरा ठीक कर लेता हूँ। आख़िर आप जैसी भी हैं, हमारी मेहमान हैं।"

"कहाँ से मेहमान, हम तो बेईमान हैं।" गीता ने मंद-मंद मुस्कराते हुए बिन्दास स्वर में कहा और मैंने जेब से चाबियाँ निकालकर गीता के हवाले कर दीं।

०००

"और हाँ, उस साले मिश्रा को मैंने अगले दिन बहस में हरा दिया था।" रोटी का कोर तोड़ते हुए मैंने कहा। सामने दीवार घडी पर इस वक़्त ठीक नौ बज रहे थे।

"तभी जाके आप उसकी नज़रों में खटकने लगे।" गीता ने गिलास में पनि भरते हुए कहा और जग पुनः मेज़ पर रख दिया, "बाई दी वे, अगले दिन बहस का विषय क्या था?"

"उस रोज़ मेरा पीरियड ख़त्म हो गया था और आधी छुट्टी का वक्त था। हम सब टीचर लोग स्टॉफ रूम में जमा थे। चाय की चुस्कियों के साथ गपशप चल रही थी। प्रिंसिपल मिश्रा भी गपशप के इरादे से हमारे मध्य आ गया और बात ही बात पर बहस छिड़ गई आतंकवाद पर।"

"अच्छा।" गीता पानी पीते हुए बोली।

"साला मिश्रा बोला, अमेरिका आतंकवाद के खात्मे के लिए काफ़ी प्रयास कर रहा है। इस बात पर मेरी हंसी छूट गई. मेरी चाय गिरते-गिरते बची।" कहते-कहते आँखों के आगे पूरा दृश्य सजीव हो उठा...

"तुम क्यों हंसे, मिस्टर मोहन?" प्रधानाचार्य ने स्पष्टीकरण माँगा।

"ऐसे ही!" मैंने मुस्कराते हुए उसी अंदाज़ में कहा।

"तुम यदुवंशियों की कूटनीतिज्ञ मुस्कान को क्या मैं पहचानता नहीं? अवश्य ही तुम मेरी बात के विरोध में कुछ कहना चाहते हो?" अनिल मिश्र तिलमिला उठा।

"सर्वप्रथम आपका ये कथन ही हास्यास्पद है सर कि अमेरिका आतंकवाद के ख़ात्मे के लिए प्रयासरत है। वह अमेरिका जो खुद मुस्लिम उग्रवादियों को हथियार सप्लाई करता है। आप उसे आतंकवाद का शत्रू बता रहे हैं। क्या यह हास्यास्पद बात नहीं है?" सारा स्टॉफ़ हंसने लगा।

"देखो मोहन, मैं तुमसे फालतू बहस नहीं करना चाहता हूँ। वैसे भी मुझे छोटे लोगों के मुंह लगने की आदत नहीं है।" चिढते हुए प्रिंसिपल महोदय बोले।

"हाँ, राष्ट्रपति के बाद आप ही हैं बड़े नवाब ..." मैंने धीरे से कहा, अगल-बगल में बैठे अन्य लोग हंसने लगे, "क्या कहा, फिर से तो कहना?" या तो मिश्र ने सुना नहीं था, या वह चाहता था कि मेरी यही बात एक बार ऊँचे सुर में सब सुनें।

"कुछ नहीं सर!"

"यू ...!" कहकर कुछ रुक से गए प्रिंसिपल महोदय, "मैं तुम्हारी सालाना रिपोर्ट ख़राब कर दूंगा।" कहते-कहते अति उत्तेजना में मिस्टर अनिल मिश्रा काँपने लगे।

"छोडिए भी सर क्या ...?" प्रिंसिपल के बगल में बैठे रावतजी ने हस्तक्षेप किया और एक-दो अन्य साथियों ने हाथ के इशारे से मुझे शांत रहने के लिए कहा।

"पता नहीं, क्यों मेरी हर बात काटते हैं। मिस्टर मोहन!" मिश्रा ने रावतजी की तरफ़ देखते हुए ही कहा।

"जो बात हमें ग़लत लगेगी, हम उसके ख़िलाफ़ बोलेंगे।" मैंने भी मिश्रा की ओर देखे बिना कहा। मेरी दृष्टि भी रावतजी पर ही केन्द्रित थी, "आख़िर लोकतन्त्र हैं, कोई तानाशाही तो नहीं!"

"तेरे लोकतन्त्र की तो मैं!" अनिल मिश्रा उत्तेजना मापने स्थान पर खड़े हो गए. शायद वह मेरी तरफ़ बढ़ना चाहते थे मगर आस-पास खड़े लोगों ने उन्हें समझाकर बैठाया।

"मोहन हम बाहर चलें।" वक़्त की नज़ाकत को समझते हुए रावतजी ने मुझसे बाहर चलने का आग्रह किया।

"ले जाओ इसको बाहर वरना मेरे हाथों से आज एकाध लाश ।" मुझे बाहर जाता देख अनिल मिश्रा पीछे से गरजा। मैं रूककर कुछ कहना चाहता था कि रावतजी ने मुझे इसका अवसर नहीं दिया और बिना कुछ कहे हम कक्ष से बाहर आ गए.

"अब यहाँ मेरा गुज़ारा होना मुश्किल है।" मैंने सिगरेट सुलगा ली, "पानी सर से ऊपर गुज़र चुका है।"

"तो ओखल में सर क्यों डालते हो? क्या ज़रूरत थी प्रिंसिपल से उलझने की? हमारी तरह तुम भी चुपचाप उसकी बात क्यों नहीं सुनते?"

"रावत जी आप मेरा नेचर (प्रकृति) जानते हैं, मुझे फालतू बातें पसंद नहीं और ग़लत तथ्यों को मैं सहन नहीं कर सकता ... चाहे प्रिंसिपल हो या डिप्टी कलेक्टर। पता नहीं इसे प्रिंसिपल किसने बना दिया, ये तो जमादार बनने लायक भी नहीं था! शक्ल देखो साले की ।" मैंने लगभग खीज उतारने वाले अंदाज़ में कहा। "

"तुम चाहो तो मैं तुम्हारा तबादला पौड़ी गढ़वाल में करवा सकता हूँ। शिक्षा मंत्री के पी.ए. से मेरी अच्छी-खासी जान-पहचान है।"

"हाँ, ठीक है जल्द-से-जल्द मेरी बात चलाओ, वरना या तो मैं पागल हो जाऊंगा या इस प्रिंसिपल के बच्चे का ख़ून कर बैठूँगा।" मैंने भीतर एक अजीब-सी घुटन को महसूस करते हुए कहा और सिगरेट का एक लम्बा-सा कश खींचा।

"ठीक है एकाध हफ़्ते में सब फ़ाइनल हो जायेगा। हो सकता है कि तीन-चार दिन में ही तुम्हें सामान बांधने की नौबत आ जाये।" रावत जी ने बड़े इत्मीनान से कहा।

"इसके बाद की कहानी तो तुम जानती ही हो गीता। आज तीन बरस होने को आये हैं, पहाड़ों में ज़िंदगी गुज़रते हुए." इस बीच हम दोनों खाना भी निपटा चुके थे।

"अब तुम सो जाओ कल सफ़र में रहोगी दिनभर।" हाथ धो चुकने के उपरान्त मैंने सिगरेट सुलगाते हुए कहा।

"मेरा तो मन कर रहा है आज यूँ ही बातें ही होती रहें। ये सिलसिला ख़त्म न हो।"

"मेरा भी कुछ ऐसा ही मन कर रहा है गीता।"

"अच्छा यहाँ के ग्रामीण जीवन और देहरादून के शहरी जीवन में क्या फ़र्क़ किया?"

"काफ़ी फ़र्क़ है गीता। शहर दिन-रात भागता है, जबकि गाँव आज भी साँझ ढले सो जाते हैं। यहाँ दिन की अपेक्षा रातें लम्बी होती हैं। मुझ जैसे अकेले आदमी को तो यहाँ दिन काटना भी बहुत कठिन लगता है। कभी-कभी एक-एक घण्टा भी एक-एक युग समान जान पड़ता है। शहरों में समय गजारने के अनेक साधन मौज-मस्ती के अनेक सामान हैं। मगर यहाँ पुरातन परम्पराएँ, संस्कृति और लोकसंगीत ही ग्रामीणों के मनोरंजन का एकमात्र अच्छा साधन है। वैसे यहाँ असीम शांति है और शोर-शराबा बिल्कुल नहीं है। दुर्गम पहाड़ी इलाक़ा होने के कारण अभी केवल टीवी की दूषित संस्कृति ने यहाँ के लोगों को ख़राब नहीं किया है। दूरदर्शन के कार्यक्रम ही बच्चों का स्वस्थ मनोरंजन करते हैं। वैसे औसतन लोग-बाग आठ-नौ बजे तक सो जाते हैं। यही कारण है, ब्रह्म मुहूर्त (चार-साढ़े चार बजे) तक ये लोग उठ जाते हैं। तत्पश्चात दैनिक क्रिया-कलापों से निवृत होकर अपने रोज़मर्रा के कार्यों में जुट जाते हैं। आमतौर पर हर कुनबा कृषि पर ही निर्भर है। कृषि के साथ-साथ कभी-कभार मेहनत-मजदूरी के अन्य छोटे-मोटे कार्य करके भी ये अपना पेट भरते हैं।"

"छोटे-मोटे कार्यों से आपका अभिप्राय?"

"सरकार की तरफ़ से जो वृक्षारोपण अभियान चलाया जाता है। सड़क निर्माण होता है। भवन-स्कूल, नहर इत्यादि बनते हैं या पानी की पाइप-लाइन हो अथवा बिजली के खम्भे गाड़ने हों, यह सब कार्य स्थानीय लोगों द्वारा ही संभव हो पाते हैं। इस तरह इन लोगों को अतिरिक्त आमदनी भी हो जाती है।"

"आपने तो पहाड़के जन-जीवन का सूक्ष्म अध्ययन कर डाला है मास्टरजी, वैसे एक राय दूँ।"

"क्या?"

"आप इस विषय पर पी एच डी क्यों नहीं कर डालते? शीर्षक होगा—गढ़वाल और उसका जन-जीवन।" गीता काफ़ी ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगी।

"वैसे राय बुरी नहीं है मैडम, अगर तुम भी यहाँ ठहर जाओ तो दोनों मिलकर इस शुभ कार्य को अंज़ाम दे डालते हैं।"

"मैं, न-बाबा-न अपने बस कि तो नहीं गढ़वाल में रह पाना।" गीता ने अपने कान पकड़ते हुए कहा।

"याद है एक बार जब हम रामलीला देखकर लौटे थे, तो मैंने तुम्हें त्रिजटा कहा था।"

"हाँ, याद है विभीषण जी." गीता ने हँसते कहा, "लेकिन आपको ये बात अचानक कैसे याद आई?"

"क्योंकि उस रोज़ भी तुमने ऐसे ही कान पकडे थे।"

"हाँ, अच्छी तरह याद है। मैं चिढ गई थी और मैंने तुम्हें विभीषण कहा था। तब हमारे मध्य दो दिन तक कोई बातचीत नहीं हुई थी।"

"फिर मम्मीजी ने सुलह करवाते हुए, तुमसे क्या कहा था छुटकी?"

"हाँ, अच्छी तरह याद है। मम्मीजी ने कहा था कि कान पकड़के मास्टरजी को सॉरी बोलो।"

"ठीक वैसे ही जब आज तुमने कान पकडे तो मुझे वह बात याद आ गई." इसी तरह पुरानी यादों को ताज़ा करते हुए कब दो-तीन घण्टे गुज़र गए इसका पता भी तभी चला जब दीवार घड़ी पर हमारी नज़र पड़ी। साढ़े बारह बज चुके थे।

"चलो छुटकी अब जाकर सो जाओ वरना सुबह सफ़र में थकावट महसूस होगी।"

"जो आज्ञा गुरुदेव।" और हँसते-हँसते ही गीता ने कक्ष से विदाई ली।

गीता तो ऊपर के कक्ष में सोने के लिए चली गई मगर मुझे नींद न आ सकी। कभी इस हाथ, कभी उस हाथ, करवटें ही बदलता रहा। फिर भी लेटा रहा और जब लाख प्रयत्न करने पर भी नींद न आई तो आदतन डायरी लिखने बैठ गया। घडी में दो बजने वाले थे। डायरी लिखते वक्त मन में कई विचार अनायास ही आ गए ... 'क्यों चली आई तुम इस निर्जन एकान्त में, इस विश्वामित्र का तप भंग करने, मेरी प्यारी मेनका। तुम्हारे बग़ैर जीने की आदत डाल चुका था मैं। क्या मिला, तुम्हे मेरा मौन भंग करके? यह सब क्या है—छलावा! मोहमाया! मृगतृष्णा! दिवास्वप्न है या फिर वास्तविकता? क्यों हृदय आज इतना व्यथित, द्रवित, विचलित और अशांत है। ये सब क्या हो रहा है मुझे? जो भावनाएं मैं हृदय में ही दफ़न कर चुका हूँ क्यों पुनः सर उठा रही हैं?' आदि-आदि ऐसे अनेक विचारों की सुनामी लहरें मेरे हृदयतट से टकराने लगीं और मैं न जाने कब तक उन्हें डायरी में लिखता रहा। यकायक घडी पर दृष्टि पड़ी तो पौने चार बज रहे थे। लगा अब मुझे भी कुछ समय सो जाना चाहिए. अन्यथा मेरी आँखें रातभर की कहानी गीता को कह देंगी। वह बात जो मुद्दत से मेरे होंठों पर है कभी ज़ुबान पर न आ सकी। कुछ यही भाव लिए मैं सो गया।

०००

बस चलने में अभी देर थी। क़रीब दस-पंद्रह मिनट का समय और शेष था। बस के ठीक सामने बने ढाबे पर ग्राहकों की भीड़ थी। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो यह कि ढाबे वाले का रोज़गार गरम था। उसके रेडियो पर फ़िल्मी गीत बज रहे थे और चूल्हे पर चाय गरम थी। अन्य लोगों की भांति ड्राइवर-कंडेक्टर भी ढाबे पर बैठे चाय-पानी पी रहे थे। कुछ सवारियाँ भी जलपान ग्रहण कर रही थी तथा शेष सवारियाँ हमारी तरह बस में बैठे-बैठे बस के चलने का इन्तिज़ार कर रही थी। मुझे यकायक हंसी आ गई. वजह यह थी कि सुबह साढ़े छह बजे गीता ने ही मुझे उठाया था। ये कहकर कि 'अरे कुम्भकरण जी कब तक सोते रहेंगे, मेरी बस छूट जायेगी?' और मैं हँसता हुआ उठ गया था। उसे कैसे बताता कि रातभर कैसे-कैसे विचार हृदय में उठ रहे थे?

"क्या हुआ ये यकायक क्यों हंसने लगे?" गीता ने पूछा।

"तुम्हारी कुम्भकरण वाली बात पर हंसी आ गई." मैंने हँसते हुए कहा और गीता को भी हंसी आ गई.

"और क्या कुम्भकरण ही तो हो तुम, वर्ना मेरी बस नहीं छूट जाती।"

"अरे मैडम, सुबह से कह रहा हूँ कि बस के चलने का समय आठ बजे है और कभी-कभी सवा आठ और साढ़े आठ भी बज जाते हैं। ख़ैर पहुँच गए न समय से। वह देखो आठ बजने को आये हैं मगर अभी भी गप्पों में लीन हैं ड्राइवर और कंडेक्टर। क्या तुम भी चाय पियोगी?"

"नहीं सफ़र में खाने-पीने से मुझे परहेज़ है। वैसे आप भी अपने खाने-पीने का ध्यान रखा कीजिये। मुझे तो आप पहले से कुछ कमज़ोर दिखाई दे रहे हैं।"

"अच्छा ध्यान रखूँगा भई."

"सुबह जब मैं सफर के लिए तैयार हो रही थी, आप मुझसे कुछ कहना चाहते थे! कुछ ख़ास बात थी क्या?"

"नहीं कोई ख़ास बात तो नहीं थी।"

"अरे एक बात तो मैं भी भूल ही गई!" कहकर गीता ने पर्स में से एक लिफ़ाफ़ा-सा निकाला और मेरी तरफ़ बढ़ा दिया।

"क्या है ये?" मैंने लिफ़ाफ़ा खोलते हुए कहा।

"उनका फोटो।"

"किनका?"

"बड़े बुद्धू हो, समझते नहीं!"

"ओ आई सी! बधाई हो, कब हुआ ये सब?"

"बस पिछले महीने ही वे मुझे देखने के लिए आये थे। आर्मी में लेफ्टिनेंट हैं।"

"बहुत-बहुत बधाई हो!" मैंने हाथ मिलाकर मुबारक़बाद दी।

"थैंक्यू. कैसा है फोटो?" गीता ने होने वाले दूल्हे के बारे में मेरी राय जाननी चाही।

"बहुत सुन्दर है तुम्हारी तरह।" कहकर मैंने फोटो गीता को वापिस कर दिया। मेरी बात सुनकर वह कुछ लज्जा गई.

"29 सितम्बर, ये तारीख़ याद रख लेना मास्टरजी. कार्ड मिले-न-मिले, आपको मेरी शादी में ज़रूर आना है।"

"ज़रूर-ज़रूर, हम ज़रूर आएंगे मोहतरमा।" मैंने लगभग वचन-सा दे दिया, "कहो तो अर्ज़ कर दूँ ... मौक़े का है, मरहूम ग़ालिब फरमा गए थे।"

"इरशाद ..."

"मेहरबाँ होके बुला लो मुझे, चाहो जिस वक़्त। मैं गया वक़्त नहीं हूँ कि फिर आ भी न सकूँ।"

"क्या बात है?" गीता ने बड़े अदब से कहा, "बहुत ख़ूब!"

"पसंद आया तो लो इसी बात पर एक और शेर सुनो... ' जी में ही कुछ नहीं है हमारे, वगरना हम; सर जाए या रहे, न रहें पर कहे बग़ैर!"

"लगता है आज शायरी ही करते रह जाओगे, मगर वह बात नहीं कहोगे, जो मैं पूछ रही हूँ।"

"कौन-सी बात?"

"वही, जो सुबह कहने वाले थे आप?"

"क्या कहूँ? कुछ ख़ास नहीं था!"

"फिर भी कुछ तो था!"

"शायद तुम जानती हो, मैं क्या कहना चाहता था?"

"मैं कुछ नहीं समझी मास्टरजी?"

"तुम हमें कभी समझ भी न पाओगी गीता?"

"क्या मतलब?"

"मतलब जानने के लिए फिर से ग़ालिब का एक और शेर हाज़िर है..."

"कौन-सा?"

"गई वह बात कि हो गुफ़्तगू तो क्योंकर हो; कहे से कुछ न हुआ, फिर कहो, क्योंकर हो?"

"पहेलियां मत बुझाओ, साफ़-साफ़ कहो? ये शायरी छोड़कर सीधे क्यों नहीं कहते!"

"अरे पगली, मैं यही कहना चाहता हूँ कि इतने अर्से तक हमारा साथ रहा। पिछले क़रीब छह-सात सालों से हम दोस्तों की तरह रहे हैं। लड़ाई-झगड़ा, हंसी-मज़ाक़ और न-जाने क्या-क्या चलता रहा हमारे मध्य। पिछले तीन वर्षों से कभी लगा ही नहीं कि मैं यहाँ अकेला जी रहा हूँ। ये यादें लेकर मैं ज़िंदगीभर जीता रहूँगा। शादी के बाद तुम मुझे भूल तो न-जाओगी छुटकी!" भावुकता में कुछ आँसू आँखों में तैर गए. जिन्हें आँखें बंद रोकने की व्यर्थ चेष्टा की।

"ये क्या हो गया है मास्टर जी आपको! सम्भालो अपने आपको! लोग हमारी तरफ़ देख रहे हैं।"

"काश! हम दोनों उम्रभर साथ रह पाते छुटकी!" कहते हुए भावुकतावश मैंने गीता का हाथ पकड़ लिया।

"काश! ऐसा हो पाता मास्टरजी?" गीता भी फ़फ़क कर रो पड़ी। उसने भी मेरे हाथ पर अपनी पकड़ मज़बूत कर ली। माहौल काफ़ी भावनात्मक हो गया था। सामने बैठी दो ग्रामीण स्त्रियाँ भी नाम आँखों से हमारी ओर देख रही थी। एक अजीब-सा शून्य बस के भीतर वातावरण में तैर गया था। जिसे ढाबे वाले के रेडियो से आते फ़िल्मी गीत की कुछ पंक्तियाँ भंग कर रही थी —"वो अफ़साना जिसे अंजाम तक लाना न हो मुमकिन, उसे इक ख़ूबसूरत मोड़ देकर छोड़ना अच्छा, चलो एक बार फिर से अजनबी बन जाएँ हम दोनों।"

काफ़ी देर तक नाम आँखों से हम दोनों ही एक-दूसरे को देखते रहे। इस बीच हमारे हाथों की पकड़ वैसी ही थी। फिर जैसे ही महसूस हुआ कि ढाबे से उठकर लोग गाड़ी में बैठने लगे हैं। तो हमारे हाथ खुद-बी-खुद अलग हो गए. "अच्छा, आंटीजी को मेरी तरफ़ से नमस्ते कहना।" जब ड्राइवर ने हॉर्न बजाकर चलने की आज्ञा मांगी तो मैंने अपनी भावनाओं को समेटते हुए कहा और भारी क़दमों को लिए मैं बस से नीचे उतर गया।

"मैं समझ गई मोनू! तुम क्या कहना चाहते थे!" गीता यकायक बोल उठी। मैं बाहर बस की उस खिड़की के निकट खड़ा था जहाँ से गीता मुझे देख रही थी।

"लेकिन अब बहुत देर हो चुकी है छुटकी!" मैंने जेब से काग़ज़ का एक पुर्ज़ा निकालकर गीता की तरफ़ बढ़ा दिया, "खैर, चिट्ठी-पटरी भेजती रहना, ये मेरा पता है और इसमें स्कूल का फोन नंबर भी लिखा है। कभी-कभी फ़ोन भी कर लेना। बाय।" मैंने हाथ हिलाते हुए कहा।

बस स्टार्ट हो चुकी थी।

"बाय ..." प्रत्युत्तर में गीता ने भी हाथ हिलाया। धीरे-धीरे बस और मेरे मध्य फ़ासला बढ़ता चला गया। 'शायद पहाड़ों में आना मेरी ज़िंदगी की सबसे बड़ी ग़लती थी?' एक ठण्डी-सी आह मेरे होंठों से निकली।

•••

एक श्वान की व्यथा

मोती यानी "मैं" और जैकी नरकीय 'पिताजी'! (क्योंकि हमारे कर्म ऐसे हैं कि स्वर्ग मिलने से रहा?) दोनों कुछ बरस पहले दुम हिलाते हुए गांव से दिल्ली आ गए थे। कारण ये था कि गांव में ज़मीदार की कुतिया बसन्ती मेरे यौवन पर मर मिटी थी और अक्सर हम दोनों खेत की मुंडेर पर या ज़मींदार की हवेली के पीछे चोरी-छिपे मिला करते थे और अपनी वफ़ा के दोगाने गुनगुनाया करते थे। दुर्भाग्यवश, जैसा कि हिंदी फ़िल्मों में भी अक्सर नायक-नायिका के साथ होता है। ठीक हमारे साथ भी वैसा ही घटित हुआ–अमीरी-ग़रीबी की दीवार। वर्गभेद। समाजवादी दृष्टिकोण से कहें तो बुर्ज़ुआ, सर्वहारा की प्रॉब्लम। मैं ठहरा ग़रीब किसान बंसी का निर्धन कुत्ता और बसन्ती ज़मींदार की हवेली की रौनक। अतः खलनायक बनकर हमारे बीच आ खड़ा हुआ ज़मींदार का इकलौता छोरा 'गबरू'। अक्सर बसन्ती के साथ मुझे देखते ही न जाने क्यों उसे पागलपन के दौरे पड़ने लगते थे! कभी पत्थर, तो कभी लाठी उठाके मार देता था कमबख़्त। एक दिन साहस जुटाकर मैंने 'गबरू' को काट ही डाला। पूरे चौदह इंजेक्शन लगे होंगे हरामख़ोर को। बस इतनी छोटी-सी बात पर हरामी जमींदार ने फ़तवा ज़ारी कर दिया कि, 'मोती को देखते ही गोली मार दी जाये।'

अतः मेरे पिता ने गांव छोड़ने में ही भलाई समझी और मज़बूरीवश हम दोनों प्राणी दुम हिलाते हुए शहर आ गए। बहुत रोई थी उस रोज़ बसन्ती। कह रही थी, "मोती, हमें भी ले चलो शहर, वरना हम भौंक-भौंककर अभी जान दे देंगे।" लेकिन तब पिताश्री ने यह कहकर बसन्ती को रोक दिया कि, "बिटिया, काहे फालतू भौंक रही हो! हम तो मज़बूरीवश बेघर होकर परदेश जी रहे हैं। फिलहाल रहने-खाने की कोई व्यवस्था नहीं है, होते ही तुम्हें बुलवा लेंगे।"

सचमुच पिताश्री ने उस वक़्त सत्यवचन कहे थे। पहले-पहल तो बड़ा विचित्र-सा लगा ये दिल्ली शहर। यहाँ के कुत्तों और इंसानों का व्यवहार एक जैसा ही था! जिसे देखो काट खाने आये! कोई सीधे मुंह बात करने को राज़ी ही नहीं। तहज़ीब नाम की चीज़ नहीं! न कोई राम-राम! न कोई दुआ-सलाम! सीधे चढ़ जाओ राशन-पानी लेकर! मैं भी मानता हूँ कि गांव-देहात में भी ई सब होवत है मगर परदेसियन को अतिथि समझकर इज़्ज़त भी देत हैं गावन के सब आदमी और कुकुर।

मन किया कि ट्रेन पकड़कर वापिस गांव चले जाए, मगर अखियन के सामने ज़मींदार का क्रूर चेहरा घूम गया और अपना इरादा रदद् करना पड़ा।

महानगरों में आवास की समस्या सचमुच कितनी विकट है, ये बात मुझे दो दिन में ही समझ आ गई थी भटकते-भटकते! माई गॉड। जहाँ जानवर भी रहना पसन्द न करें, वहां भी मानव नामक जंतू बड़ी सहजता से विचार रहा है। घासफूस की टूटी-फूटी झोंपड़ी में घासलेट खाकर, कीड़े-मकोड़ों से भी गया-गुज़रा हो चुका है आदमी! नदी-नाले तक क़ब्ज़ा रखे हैं! हम श्वानों के रहने लायक जगह भी नहीं छोड़ी ससुरों ने! पहले-पहल तो बड़ा क्रोध आता था, मगर अब दया भी आने लगी है इस दो टांगों वाले प्राणी की दुर्दशा पर।

इस बीच कोठी-कार वाले कुत्ते-बिल्लयों को भी देखने का असीम सौभाग्य (शायद पूर्व जन्मों के पुण्य प्रतापों से) प्राप्त हुआ, मुझ जैसे तुच्छ जीव को! क्या ठाट-बाट हैं, इन जानवरों के? खाट पर ही टट्टी-पेशाब करते हैं! मालिक की गोद में बैठते हैं और मेमसाब के गाल चूमते हैं! कई बार तो मुझे खुद पर क्रोध आया कि भगवान तूने मुझे किसी अमीर आदमी का कुत्ता बनाकर क्यों नहीं भेजा? क्या मज़े हैं इनके पिल्लों के, मनुष्यों के बच्चे चाय तक को तरसते हैं और ये दूध-मलाई उड़ाते हैं! निर्धनों के भाग में रुखी-सूखी भी नहीं और ये मटन-चिकन खाते हैं। हाय रे इंसानियत! इंसान बगैर दवा-दारू के मर रहा है और कुत्ते-बिल्लियों के इलाज़ में हज़ारों-लाखों ख़र्च किये जाते हैं? विदेशों से महंगे-महंगे डॉक्टर तक बुलाये जाते हैं? वाह रे प्रभु! कितनी दया-ममता दी है तूने, धनवानों के हृदय में! कौन कमबख़्त कहता है कि अमीर लोग बेरहम-बेदर्द होते हैं? गांव में तो ईश्वर से प्रार्थना किया करता था कि अगले जन्म में मुझे मानव योनी प्रदान करना (जो कि सुनते हैं चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद भी मुश्किल से प्राप्त होती है) लेकिन शहरी मनुष्य की दुर्दशा देखकर ये भ्रम भी जाता रहा। अब तो दिल्ली की गलियों में भटकते हुए ये दुआ करता हूँ कि प्रभु! चाहे जो कुछ भी हो तू जन्म-जन्मान्तर तक मुझे कोठी-कार वाले का कुत्ता ही बनाना! ताकि मज़े का खाना-पीना तो मिले ही, साथ ही साथ गोरी-गोरी चमड़ी वाली मेमों की गोदी में बैठने का असीम सुख भी मुझे प्राप्त होती रहे। ख़ैर, ये तो बाद की बात है, मैं ज़िक्र कर रहा था, आवास की समस्या का। शुरू-शुरू में तो कुछ दिन हमने किसी तरह इंसानों के साथ ही फुटपाथ पर काटे। आख़िरकार हमें एक सरकारी स्कूल के पास नाली में रहने लायक जगह मिल ही गई। अब हम दोनों पिता-पुत्र गांव की ताज़ी आबो-हवा की कल्पना करके नाले की बदबूदार हवा बर्दाश्त करते और स्कूल के हरे-भरे मैदान को देखकर हमें गांव के खेत-खलिहान याद आते! हम दोनों ठंडी आह भरकर रह जाते!

खुशियों के मामले में मैं शुरू से ही बदनसीब रहा हूँ। एक चीज़ मिलती है तो दूसरी छिन जाती है। जुम्मा-जुम्मा चार दिन हुए थे आवास की समस्या का समाधान हुए कि एक दिन म्युनिसिपल कारपरेशन वालों की कुत्ता पकड़ने वाली गाड़ी आई और भोजन की तलाश में निकले पिताश्री को उठाकर ले गई। वो दिन है पिताजी आज तक नहीं लौटे हैं। मैंने उन्हें तब से स्वर्गीय (मेरा मतलब नरकीय) मान लिया है जब से पड़ोस की एक बूढ़ी खुजली वाली मरियल-सी कुतिया ने मुझे बताया कि उसके शौहर को भी भरी जवानी में ससुराल वाले (म्युनिसिपल वाले) उठाकर ले गए थे और 'वे' आज तक नहीं लौटे।

"ताई, ये म्युनिसिपल वाले हम जैसे भोले-भाले कुत्तों को पकड़ के करते क्या हैं?" मैंने कान खुजाते हुए पूछा।

"प्लीज़, मेरे सामने खुजली मत करो, मुझे भी खुजली होने लगती है।" ताई ने भी अपना कान खुजाते हुए कहा।

"ठीक है ताई, आइन्दा ख़्याल रखूंगा, लेकिन ये म्युनिसिपल वाले करते क्या हैं?" मैंने दुबारा भौंकते हुए पूछा।

"कोई कहता है, गोली मार देते हैं! कोई कहता है कि इंजेक्शन लगा के सुला देते हैं! तो कोई कहता है खाने में ज़हर दे देते हैं! जितने मुंह उतनी बातें।" ताई आवेश में अब कभी अपना कान, तो कभी पैर खुजाने लगी और मुझे अजीब-सी गुदगुदी होने लगी। सचमुच! मैंने पहली बार अनुभव किया कि, 'खुजाने में जितना आनंद है, उतना शायद दुनिया की किसी वस्तु में नहीं।'

"कितने निर्दयी होते हैं इंसान? कुत्तों से भी गए गुज़रे!" मेरे हृदय से आह निकली।

"ये सिला दिया है हमारी वफ़ादारी का, इंसानों ने।" खुजलाते-खुजलाते यकायक ताई क्रोधित होकर भौंकी, "ख़ुद आवारा कुत्तों की तरह घूमते हैं आदमी, और हम रोज़ी-रोटी की तलाश में भी घूमें, तो धर-पकड़ लिए जाते हैं। हमारे जज़्बात सिर्फ़ मेनका गाँधी जी ने ही समझे हैं। जबसे उन्होंने हम जैसे बेज़ुबान जानवरों की हिमायत की है, देशभर के तमाम मदारी, शिकारी, सपेरे भूखों मारने लगे हैं।" कहकर ताई इत्मीनान से खुजली करने लगी।

"अच्छा मैं भी जाऊँगा मेनका जी से मिलने।" मैंने ख़ुशी ज़ाहिर की।

"तेरी कौन सुनेगा बेटा? इंसान-इंसान की नहीं सुनता, अगर कारपरेशन वालों की नज़र पड़ गई तो बेकार में तुम भी धर लिए जाओगे।"

"सो तो ठीक है ताई, मगर डर-डरके कब तक जियूँ?"

"सारे दिन एक से नहीं रहते बेटा, हौंसला रख। मुझे देख मैं ग़रीब अबला नारी पांच-पांच जवान बेटियों का पेट भर रही हूँ।" ताई ने खुजाते हुए हिम्मत बढाई, "घबरा मत, बेख़ौफ़-बेफ़िक्र जी। तू आज से अपना देहाती चोला उतारके पूरा शहरी बाबू बन जा!"

"शहरी बाबू?" मैंने हैरानी से पूछा, "वो कैसे?"

"देहाती चोला उतारने से अभिप्रायः यह है कि, सीधेपन और भोलेपन को त्याग दो।" ताई शुद्ध हिंदी में भौंकी, "और शहरी बाबू की शाब्दिक परिभाषा मात्र यह है कि, मक्कारी, खुदगर्जी और अड़ियलपने को अपना लो। कोई मरता हो! लाख गिड़गिड़ाता हो! उसकी एक न सुनो। उसकी तरफ़ मत देखो।"

"इससे क्या होगा?" मैंने पुनः हैरानी व्यक्त की।

"मोती बेटा, इससे ये फ़ायदा होगा कि, ये शहर तुम्हारा हो जायेगा और तुम इस शहर के दामाद।" ताई ने समझाते हुए कहा।

उसी दिन से मैंने ताई की बात गांठ क्या बाँधी कि मुझ पर दिल्ली का रंग बख़ूबी चढ़ने लगा। अब मैं भी यहाँ के शहरी कुत्तों की तरह चलती गाड़ियों के पीछे दौड़ना अपना परम कर्तव्य और धर्म समझने लगा हूँ। ख़ासकर दुपहिया वाहनों के पीछे भागने में बड़ा मज़ा आता है क्योंकि दुपहिया चालकों के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगती है और उनकी फूंक सरक जाती है। वैसे दुपहिया चालकों से मुझे ख़ासी नफ़रत भी है क्योंकि जिस रोज़ हम पिता-पुत्र दुम हिलाते हुए गांव

से दिल्ली आये थे। ये उसी दिन की घटना है। हम बस-अड्डे से बाहर निकले ही थे कि एक कम्बख़्त ने हॉर्न बजाकर हमको डरा दिया। हॉर्न की आवाज़ बिलकुल किसी शक्तिशाली बुलडॉग की आवाज़ से हू-ब-हू मिलती-जुलती थी। बस फिर होना क्या था? हम पिता-पुत्र आगे-आगे दुम दबाये भागे जा रहे थे और वो कम्बख़्त स्कूटर वाला पीछे-पीछे हॉर्न बजाता हुआ। हमें डराता जा रहा था। करीब डेढ़-दो किलोमीटर भागने के बाद हमने पीछे मुड़कर देखा तो असलियत का पता चला और पिताश्री ने भौंक-भौंककर माँ-बहन की मोटी-मोटी ठेठ-देहाती गालियाँ दुपहिया चालक को दीं। वहां उपस्थित शहरी कुत्ते मुंहफाडे हमारे इस गंवारपने पर हंसने लगे। तब से किसी भी दुपहिया वाहन को देखकर मुझे वह घटना स्मरण हो आती है और तब मैं पागलों-सा उसके पीछे दौड़ने लगता हूँ। एक दिन तो एक साइकिल सवार इतनी बुरी तरह डर गया कि एक्सीडेंट होते-होते बचा। इसके अलावा अब मैं भी शहरी कुत्तों की तरह झपटा मारकर रोटी-बोटी छीनने का अभ्यस्त हो चला हूँ। राह चलते किसी भी व्यक्ति को काट खाने पर जो आनंद मिलने लगा है उसके तो कहने ही क्या? अकारण किसी को भी देख भौंकने लगता हूँ इसलिए लोग-बाग अब मुझे डण्डा-पत्थर मारने से डरने लगे हैं। मुहल्ले की सारी विवाहित-अविवाहित कुत्तियां मेरी इस उन्नति पर फ़िदा हैं। पिछले दिनों पब्लिक स्कूल के निकट रहने वाले कुछ कुत्तों की मेहरबानी से मैंने अंग्रेजी भाषा पर भी दक्षता हांसिल कर ली है। अब मैं भी अंग्रेजी में भौंक-भौंककर देहाती और हिंदी भाषी कुत्तों पर रौब झाड़ लेता हूँ। नए कुत्ते तो मुझे फॉरेन रिटर्न समझते हैं। पहले जो कुत्ते गांवड़ी-गंवार कहकर मेरा उपहास करते थे आजकल मैंने उन्हें अंग्रेजी की ट्यूशन पढ़ा रहा हूँ। सचमुच महानगरों में तहज़ीब का पर्याय ही बदल गया है। मात्र अंग्रेजी में भौंकने के कारण मुझ जैसे गंवार देहाती कुत्ते को भी पढ़ा-लिखा महाविद्वान मान लिया गया है। इसी नाते पिछले दिनों कुत्तों की सत्ताधारी राजनैतिक पार्टी ने मुझे 'कुत्ता-रत्न' पुरस्कार देने की घोषणा की थी। जिसे ताई के कहने पर मैंने लेने से इनकार कर दिया था। ताई ने साफ़-साफ़ बताया, "पुरस्कार लेने के बाद राजनैतिक पार्टी वाले तुम्हें भी राजनीति में घसीट लेंगे! फिर तुम कुत्ते नहीं रहोगे, इंसान बन जाओगे!"

"इंसान, क्या मतलब?" मैंने सवाल दाग़ा।

"वैसे देखने में तुम रहोगे कुत्ते ही मगर राजनीति में जाने के बाद तुम्हारी हरकतें इंसानों जैसी हो जाएँगी! फिर तुम भी दूसरों के वास्ते छल-कपट, घृणा का माहौल तैयार करने लगोगे! क़दम-क़दम पर अपने शत्रुओं के विरुद्ध षड्यंत्र रचोगे! कभी धर्म के नाम पर तो कभी जाती के नाम पर वोट मांगने लगोगे! दंगे-फसाद भी करवाओगे! नहीं मोती बेटा, तुम इन पचड़ों में मत पड़ो। कुत्तों की बिरादरी में कुत्ता बनकर ही जियो। कभी इंसान मत बनना। ठुकरा दो ये पुरस्कार।"

"ताई तुम्हें ये सब कैसे मालूम?"

"बेटा मैं कोई फुटपाथी कुतिया नहीं हूँ। मेरा बचपन एक पूर्व मंत्री जी के घर गुज़रा था। बस वहीं से ये सब मालूम हुआ।"

"पर ताई, तुम फुटपाथ पर कैसे आई?"

"बेटा, मीठा खाने के कारण मुझे खुजली हो गई थी और फुटपाथ पे आना पड़ा।"

"बड़ी दर्दनाक़ कहानी है तुम्हारी ताई!" मैंने पूंछ हिलाकर अपनी श्वानुभूति दर्शायी।

"ख़ैर छोडो ये पुरानी बातें, बेटा। ये बताओ कभी संसद भवन गए हो?"

"नहीं, ये क्या बला है?"

"वाह मोती! कहते हो कि दिल्ली में रह रहा हूँ। हैरानी है कि तुमने संसद भवन नहीं देखा! तो फिर दिल्ली को क्या देखा?"

"साफ़-साफ़ कहो ताई, यूँ पहेली न बुझाओ!"

"अरे बेटा, संसद भवन में ही तो देशभर से चुने हुए सारे अक्लमंद और महान लोग इकट्ठा होते हैं और बात-बात पर लड़ते हैं।" ताई ने समझाया, "कभी-कभी तो हाथापाई तक की नौबत भी आ जाती है। जिन पूर्व मंत्रीजी के यहाँ मैं पली-बड़ी थी। एक बार तो भवन के अंदर उनका सिर फूट गया था।"

"किस बात पर?"

"वो प्याज के बढ़े हुए दामों पर सत्ताधारियों का विरोध कर रहे थे कि सत्ताधारियों ने प्याज की बौछार कर दी और बेचारे पूर्व मंत्री जी का सिर फूट गया।"

"बाप रे, इतनी ख़राब चीज़ होती है राजनीति!"

"हाँ बेटा, इसलिए कह रही हूँ छोड़ दो ये इनाम-फिनाम का चक्कर। मार दो लात पुरस्कार को।"

ताई के कहने पर मैंने पुरस्कार को ठोकर क्या मारी कि मीडिया और अख़बार वालों ने मुझे जननायक बना दिया। मेरी जीवन गाथा को खूब नामक-मिर्च लगाकर प्रस्तुत किया गया। टेलीविजन पर ऐंकर द्वारा चींख-चींख कर बताया गया कि कैसे मैं गंवार-देहाती से आजका पढ़ा-लिखा सुसंस्कृत शहरी बन गया। वैसे आजकल इंसानों में भी चर्चित होने के लिए 'पुरस्कार को ठोकर मारने वाला ट्रैंड' स्थापित हो चुका है। हर दूसरे-चौथे दिन कोई-न-कोई कलाकार या साहित्यकार पुरस्कार को ठोकर मारकर चर्चित होता ही रहता है। श्वानों में ये महान काम करने वाला शायद मैं पहला शख़्स हूँ। पिछले दिनों कुत्ता दैनिक न्यूज़ वालों ने भी मेरी बढ़ती लोकप्रियता देखकर मुझे संपादक की पोस्ट ऑफ़र की थी। जिसे ताई के कहने पर मैंने ये कहकर ठुकरा दिया था कि "ये तो फालतू आदमियों का काम है। इसके लिए किसी फ्लॉप लेखक को पकड़ो, जिसकी कवितायेँ, कहानियाँ कोई न पढ़ता हो।"

ताई मेरी इस वर्तमान प्रगति को देखकर इतनी प्रसन्नचित हुई कि हंसी-ख़ुशी उसने अपनी बड़ी बेटी काली का हाथ मेरे हाथों में दे दिया। हाँ, एक बात और, जिसका ज़िक्र करना मैं भूल गया था। अब मैं भूखा नहीं मरता। रोज़ दावतें उड़ाई जाती हैं। गांव में हम बग़ैर बुलाये कहीं नहीं जाते थे, लेकिन दिल्ली शहर में अन्य कुत्तों और आदमियों की देखादेखी बिन बुलाये मेहमान की तरह कहीं भी, किसी भी शादी-पार्टी, तेरहवीं आदि में पहुँच जाना, हम भी अपना पैदाइशी हक़ समझने लगे हैं। फिर सच ही तो है। जिसने की शर्म! उसके फूटे कर्म! मुफ़्तख़ोरी में ताई और उसकी पांचों बेटियां भी मेरा भरपूर साथ देती हैं। खुजली के बावज़ूद ताई को हलवे से कोई परहेज़ नहीं है। अब तो मेरा मन शाही पनीर, मटर, छोले, हलवा-पूरी खा-खाकर ऊब-सा गया है। अब तो केवल मदिरा सेवन में ही मुझ नाचीज़ को महा आनन्द मिलता है। कैसे? (आप सोच रहे होंगे, एक कुत्ता और वो भी शराबी! भला कैसे?) जनाब, तो जवाब हाज़िर है, आजकल शादी-पार्टियों में सड़क के किनारे या तम्बू के पीछे जो शराबी-कबाबी गिरे रहते हैं? उनका मुख चाट-चाटकर ही खाकसार को नशा हो जाता है। तब मदिरा की महक मेरे दिलो-दिमाग़ पर एक अजीब-सा उन्माद पैदा करती है और तब मैं ख़ुद को किसी हीरो या सुपर-स्टार से कम नहीं समझता हूँ। सड़ी-गली कुतिया भी मुझे मिस

वर्ल्ड या मिस यूनिवर्स दिखाई देने लगती है। शराब के इस महा आनन्द को प्राप्त करने के लिए अर्थात दारूबाजों का मुख चाटने के लिए, अक्सर मुहल्ले के अन्य कुत्तों से मेरी नोक-झोंक होती रहती है। कभी-कभी हाथापाई की नौबत भी आ जाती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि अंततः विजयश्री मुझे ही प्राप्त होती है। आख़िर शराब की लत को ज़िंदा रखने के लिए इतना जिगर तो चाहिए ही!

इसी तरह शराबियों का मुंह चाटते हुए मज़े से दिन गुज़र रहे थे कि एक दुर्घटना हो गई। एक रोज़ भोजन की तलाश में ताई अकेली क्या निकली कि उसका काल आ पहुंचा। सड़क पर कर रही थी बेचारी कि बीच सड़क में ही उसे बड़े ज़ोरों की खुजली उठी और ताई सड़क पर ही अपनी पीठ रगड़ने लगी। तभी कंपप्टिशन में चल रही एक अंडर डी.टी.सी. बस ने बेचारी को कुचलकर उसकी खुजली हमेशा-हमेशा के लिए शांत कर दी। इंसान तो अक्सर सड़क दुर्घटनाओं के शिकार होते रहते हैं मगर किसी जानवर के, और ख़ासकर किसी भी कुत्ते के मरने पर मुझे गहरा आघात पहुँचता है, क्योंकि ये कहावत बन गई है कि बेचारा कुत्ते की मौत मरा है। हालाँकि श्वानों के मध्य इसे 'आदमी की मौत' की संज्ञा दी जाती है। ख़ैर छोड़ो, इस बात को भगवान ताई की आत्मा को खुजली अर्थात शांति दे। रिश्तेदारी होने के नाते उस बूढ़ी की सभी बेटियों की ज़िम्मेदारी मुझ ग़रीब पर आन पड़ी। उसी का परिणाम है कि आज मुझ नाचीज़ की पांच बीवियाँ हैं। पहले पूरे इलाक़े में मुसलमानों के कुत्तों की धाक थी क्योंकि उन सबकी चार-चार बीवियाँ थीं लेकिन अब मेरा रौब चलता है। सारे कुत्ते रिस्पेक्ट देते हैं। (मेरे ख़्याल से सभी को चार-पांच शादियाँ कर लेनी चाहिए।) इससे फ़ायदा ये है कि कोई भी सिर पर नहीं चढ़ती और दुम दबाये सभी सेवा में हाज़िर रहती हैं।

पांचों घरवालियों के साथ पिछले कई वर्षों से ज़िन्दगी बड़े मज़े से कट रही है। बस कभी-कभार गांव की और बसन्ती की याद आ जाती है तो हृदय ग़मगीन-सा हो जाता है। इस बीच मैंने सुना कि गांव में बसन्ती भी दर्जनभर बच्चों की माँ बन चुकी है। यह जानकर मुझे संतोष हुआ कि बसन्ती ने भी अपना घर बसा लिया है। मेरे ग़म में वह लैला नहीं बनी।

बसन्ती के दर्ज़नभर बच्चों की ख़बर सुनकर मैंने अब एक नया संकल्प लिया है कि श्वानों की आबादी भी इंसानों के समानांतर बढ़नी चाहिए। तभी धरा पर कुत्तों की हुक़ूमत क़ायम होगी और धरा पर से मनुष्य का एकमात्र दबदबा ख़त्म होगा। ये सब तभी सम्भव है जब हर श्वान की चार-पांच शादियाँ हों। पूरी दुनिया में इंसान छह अरब हैं, तो कुत्ते लगभग बारह अरब होने चाहिए। हर एकाध मिनट में एक मानव शिशु जन्म लेता है तो इतने ही समय में श्वानों के चार-पांच शिशु होने चाहियें। अब मैं धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों के रिकॉर्ड से थोड़ा-सा ही दूर हूँ। उम्मीद है, इन सर्दियों तक ये रिकॉर्ड मेरे नाम पर दर्ज़ होगा।

मगर जब मैंने अपनी ये हृदयगत मंशा पांचों घरवालियों को बताई तो जानते हो क्या हुआ? कम्बख़्त पांचों की पांचों मुझे सीवर के गटर में बंद करके दिनभर को न जाने कहाँ ग़ायब हो गईं? शाम को जब उन्होंने मुझे गटर से निकाला तो बताया गया कि पांचों ने नसबन्दी कैम्प में जाकर नसबन्दी करवा ली है! धत तेरे की!!

•••

तिलचट्टे

वातावरण में सुबह की ठण्डक और नमी अभी कुछ शेष थी, इसलिए धूप की तपन काबिल-ए-बर्दाश्त थी। लेबर चौक पर फंसी गाड़ियों की हॉर्न की आवाज़े। फैक्ट्रियों की तरफ़ बढ़ते मज़दूरों के समूह।

सामने हरी बत्ती होने के बावज़ूद चलती गाड़ियों के मध्य से लोगों के निकलने की कोशिशें। ऐसा प्रतीत हो रहा है–मानो, अकेले पृथ्वी को छोड़, हर चीज़ घूम रही है। सब कुछ भागता जा रहा है! इस बात में कोई फ़र्क़ नही, वस्तु सजीव है या निर्जीव! हरी से लाल होती बत्ती हो! या इस्पात को गलाकर बने लोहे के निर्जीव वाहन! हर चीज़ सजीव हो उठी है! इसके विपरीत यंत्रवत दिशा-निर्देश पाए लोग किसी मशीनी रोबोट की तरह, समय पर पहुँचने की जुगत में उलटे-सीधे हथकण्डे अपनाते दीख रहे हैं।

लेवर चौक पर सुबह के समय लोगों की भीड़भाड़ और वाहनों के जाम का दृश्य आम है। बल्कि यूँ कहिये, यह शहरीजीवन की दिनोंदिन होती जा रही दुर्गति का अटूट हिस्सा है। जो यहाँ से प्रतिदिन गुज़रते हैं, वह इसके अभ्यस्त हो चले हैं। यक़ीनन जो पहली बार या काफ़ी समय बाद यहाँ से गुज़र रहे हैं, उन्हें यह सब देखना अजीब लग सकता हैं और विचलित कर सकता है।

"फंस गए न बच्चू!" कार के भीतर ड्राइव कर रहे शख़्स से उसके बग़ल में बैठे व्यक्ति से कहा, "मैंने पहले ही कहा था, फोर्टीज़ हॉस्पिटल वाले रूट से ले चलो, मगर जनाब के कान में जूं तक न रैंगी। अब फंस गए न लोगों की भीड़ में।"

"ये लोगों की भीड़ कहाँ है? ये तो दाने-पानी की तलाश में निकली तिलचट्टों की कोई भीड़ जान पड़ती है।" ड्राइवर ने हरीबत्ती की प्रतीक्षा में खड़ी अपनी कार के भीतर से मज़दूरों के समूह पर घिनौनी टीका-टिप्पणी की।"

"वाह गुरु वाह! आपने मज़दूरों को क्या उपमा दी है तिलचट्टों की।" उसके बग़लगीर ने ठहाका लगाते हुए उसकी बात का समर्थन किया, "आपने तो गोर्की की याद दिला दी।"

"हराम के पिल्लों।" कार के निकट मेरे साथ खड़ा कलवा उस कार वाले पर चिल्लाया, "हमारा शोषण करके तुम एशो-आराम की ज़िंदगी गुज़ार रहे हो और हमें तिलचट्टा कहते हो! मादर .... !" माँ की गाली बकते हुए कलवे ने सड़क किनारे पड़ा पत्थर उठा लिया। वह कार का शीशा फोड़ ही देता, यदि मैंने उसे न रोका होता। कार वाला यह देखकर घबरा गया और जैसे ही हरी बत्ती हुई, वह तुरंत कार को दौड़ाने लगा।

"कलवा पागल हो गए हो क्या तुम?" मैंने उसे शांत करने की कोशिश की।

"हाँ-हाँ पागल हो गया हूँ मैं। हम मज़दूरों की तबाह-हाल ज़िंदगी का कोई आमिरज़ादा मज़ाक उड़ाए तो मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता। साले का सर फोड़ दूँगा। चाहे वह टाटा-बिडला ही क्यों न हो?" कलवा पर जनून हावी था।

"जल्दी चल यार, फ़ैक्ट्री का सायरन बजने वाला है। कहीं हॉफ-डे न कट जाये।" और हम दोनों मित्र, मज़दूरों की भीड़ में गुम हो गए।

ooo

आज दिन का माहौल और दिनों की अपेक्षा गरम था। सूर्यदेव आकाश में जून की प्रचण्ड गर्मी के साथ बिराजमान थे। सभी मज़दूर फ़ैक्ट्री के बाहर सड़क किनारे बने काके के ढाबे पर दिन की चाय पीते थे। काके का असली नाम सरदार जोगिन्दर सिंह था। वह पंजाब के भटिंडा का रहने वाला था, लेकिन पंजाब गए उसे एक अरसा हो चुका था। उसके कोई औलाद न थी। दुर्घटना में पत्नी के गुज़र जाने के बाद से वह अकेला ही जीवन काट रहा था। मज़दूरों के साथ दो घड़ी हंस-बोल लेना ही उसका मनोरंजन था। रातों को वह तन्हाई में अक्सर बांसुरी होंठों पर लगाए राँझे वाली धुन बजाया करता था। चाय पीने के लिए दिन में फ़ैक्ट्री के मज़दूरों का जमघट-सा लग जाया करता था। चाय के अतिरिक्त बीड़ी-सिगरेट, तम्बाकू-गुटका भी ग्राहक उसके ढ़ाबे से ख़रीदते थे। सभी मज़दूर उससे परिचित थे। अतः ख़ूब गपशप भी चलती थी। जिससे निरन्तर काम के उपरान्त थकेहारे मज़दूरों को कुछ घड़ी आराम मिलता था।

"सतश्रीअकाल काके।" कलवा बिंदास अंदाज़ में बोला।

"आहो, सतश्रीअकाल जी.... बैठो बादशाहो, चाय तैयार है।" काके ने गिलासों में चाय उड़ेलते हुए कहा।

"तुम्हारी चाय की ख़ुशबू हमें यहाँ खींच लाती है सरदारजी।" मैंने बड़ी आत्मियता से कहा और दो गिलास उठा लिए। एक कलवा को पकड़ते हुए कहा, "साहब के मिजाज़ अब कैसे हैं? सुबह तो बड़े ग़ुस्से में थे!"

"क्यों? क्या हुआ था?" काके बोला, "ओ बादशाहो, रब दे वास्ते, मुझे भी कुछ बताओ।"

"ज़रा साँस तो लेने दो। हमें दो घूंट चाय तो पी लेने दो।" भूमिका बांधते हुए मैंने कहा, ततपश्चात चाय की चुस्की ली।

इस बीच काके की बढ़ती उत्सुकता देख मैंने सुबह का क़िस्सा संक्षेप में कह सुनाया। आस-पास उपस्थित अन्य मज़दूरों ने भी बड़े ध्यान से सुना। क़िस्सा सुनकर काके की भवों में बल पड़ गए। क्रोधवश उसकी आँखों के दायरे बड़े हो गए, "यार कलवे तूने स्साले की गाड़ी का शीशा फोड़ ही देना था।"

"क्या सरदार जी, आप भी उलटी शिक्षा दे रहे हैं?" मैंने पुनः चाय की चुस्की लेते हुए कहा।

"अरे यार काके रोज़ की कहानी है," कलवा ने गरमा-गरम चाय को फूँकते हुए कहा, "घर से फ़ैक्ट्री ... फिर फ़ैक्ट्री से घर... अपनी पर्सनल लाइफ़ तो बची ही नहीं... सारा दिन मशीनों की न थमने वाली खडखडाहट। चिमनी का गलघोंटू धुआँ। किसी पागल हाथी की तरह सायरन के चिंघाड़ने की आवाज़। कभी न ख़त्म होने वाला काम... क्या इसलिए ऊपरवाले ने हमें इन्सान बनाया था?" आसमान की तरफ़ देखकर जैसे कलवा ने नीली छतरी वाले से प्रश्न किया हो, "सुबह सही बोलता था, वह उल्लू का पट्ठा... हम तिलचट्टे हैं। क्या कीड़े-मकोड़ों की भी कोई ज़िंदगी होती है? क्या हमें भी सपने देखने का हक़ है?" काके की तरफ़ देखते हुए कलवा ने कहा।

"ओ बादशाहो मैं की कहूँ! मैंणु तो सपने ही नहीं आंदे।" काके ने हवा में हाथ लहराते हुए कहा, "लेकिन चाय पीते वक़्त मायूसी न फैलाओ। यहाँ मज़दूर भाई आते हैं। दो घड़ी बैठकर अपनी थकान मिटाकर चले जाते हैं। ज़िन्दगी ऐसे ही चलती है यारों।" काके ने माहौल को खुशनुमा बनाने की गरज से कहा।

"कलवा, तुम्हारी बात सुनकर मुझे पंजाबी कवि पाश की पंक्तियाँ याद आ रहीं हैं।" मैंने हँसते हुए कहा।

"यार तू बंदकर अपनी साहित्यिक बकवास। जिस दिन फ़ैक्ट्री में क़दम रखा था, बी.ए. की डिग्री मैं उसी दिन घर के चूल्हे में झोंक आया था।" कहकर कलवा ने चाय का घूँट भरा।

"सुन तो ले पाश की ये पंक्तियाँ, जो कहीं न कहीं हमारी आन्तरिक पीड़ा और आक्रोश को भी छूती हैं!" मैंने ज़ोर देकर कहा।

"तू सुनाये बिना मानेगा नहीं, चल सुना।" कलवा ने स्वीकृति दे दी।

"*सबसे ख़तरनाक है मुर्दा शांति से भर जाना*
न होना तड़प का, सब सहन कर जाना
घरों से रोज़गार के लिए निकलना और दिहाड़ी करके लौट आना
सबसे ख़तरनाक है हमारे सपनों का मर जाना,"

मेरे मुख से निकली 'पाश' की इन पंक्तियों ने आस-पास के वातावरण की गर्मी में वृद्धि कर दी।

"वाह दीनू कमाल है... ग़ज़ब कित्ता ओये!" काके ने हैरानी से भरकर कहा, "तुम दोनों तो बड़ी ऊँची-ऊँची बातें करने लगे हो। सच कहता हूँ इस फ़ैक्ट्री में तुम दोनों नहीं होते तो मैं कबका ये टी-स्टाल छोड़कर कहीं और चला गया होता।"

"अब कहाँ जाओगे काके इस बुढ़ापे में।" कलवे ने ठहाका लगाया, "और काके रही बात बातों की तो हम नपुंसक लोग बातों के सिवा कर ही क्या सकते हैं?" कहकर कलवा ने ठहाका लगाया।

"लो सिकन्दर मिर्ज़ा भी आ गए!" बग़ल में खड़ा लल्लन बोला।

"कहाँ रह गए थे सिकन्दर भाई! आज हॉफ-डे आ रहे हो।" साइकिल ढ़ाबे के बाहर खड़ी करके सिकन्दर मिर्ज़ा हमारी तरफ़ ही बढ़े चले आये तो मैंने मुस्कुराते हुए कहा, "चाय पियोगे!"

"चाय नहीं जनाब, मेरे मुहँ में गुटका है।" कहकर सिकन्दर मिर्ज़ा ने पैरों के पास रखे डस्टबीन में मुहँ में रोके हुए थूक को थूकते हुए कहा। फिर पास में पड़ी पानी की बोतल से थोड़ा

पानी लिया और कुल्ला करके पुनः डस्टबीन की सेवाएं लीं। ततपश्चात पानी के कुछ घूंट हलक से नीचे उतरने के बाद उन्होंने फ़रमाया, "आज बड़ी बिटिया को अस्पताल में दिखाया तो महंगी-महंगी दवाएं लिखने के बाद डॉक्टर साहब कहते हैं– बेटी को अच्छी ख़ुराक खिलाओ। अब उस डॉक्टर को कैसे बताऊँ आठ-दस हज़ार रूपये में पांच बिटियों को पालना क्या होता है?" कहते-कहते सिकन्दर मिर्ज़ा ने अपनी आँखें बंद कीं। एक थकावट-सी उनके झुर्रिदार चेहरे पर उभर आई। वे रुआंसा होकर बोले, "मेरी ख़ुद की उम्र भी पैंतीस साल नहीं हुई! लेकिन पचास-पचपन से ऊपर का दिखाई देने लगा हूँ। शोषण और ग़रीबी ने मुझे जवानी में ही बूढ़ा बना दिया है।"

"हरेक मज़दूर की यही कहानी है मिर्ज़ा साहब। बचपन ख़त्म होते ही सीधा बुढ़ापे में क़दम रखता है। जवानी क्या होती है? इसे वह ठीक से जान भी नहीं पाता है।" आत्ममंथन की शैली में कलवा बोला, "कुपोषण पर सेलिब्रिटी द्वारा विज्ञापन दिए जाते हैं कि देश का हर दूसरा बच्चा कुपोषण का शिकार है। अब उसे कौन समझाए कि इस देश का मज़दूर बारह-चौदह घण्टे काम करने के बावज़ूद इतना नहीं कमा पाता कि बच्चे को अच्छा भोजन करा सके!" इतना कहकर कलवा मेरी तरफ़ ध्यान से देखने लगा, "क्या मज़दूर को शादी करने का हक़ है?"

"तुम तो गोर्की की तरह सोचने लगे हो कलवा।" मैंने गंभीरता इख़्तियार की, "मज़दूरों की तबाह-हाल ज़िन्दगी पर एक किताब क्यों नहीं लिख देते?"

"अरे यार छोड़ो ये सब!" कलवा ने हँसते हुए कहा। फिर काके की तरफ़ देखकर बोला, "काके भाई, ज़रा अपना टीवी तो आन कर, लंच ब्रेक ख़त्म होने तक कुछ समाचार ही देख लें।"

टीवी ऑन हुआ तो कल रात हुए रेलवे दुर्घटना के समाचार को दिखाया जा रहा था। दुर्घटना स्थल के तकलीफ़देह चित्र, बड़े विचलित करने वाले थे। इसलिए कैमरे को धुंधला करके मृतकों की लाशों को दिखाया जा रहा था। कुछ रोते-बिलखते परिवारजन। रेलमंत्री द्वारा मुआवज़े की घोषणा। मृतकों को पाँच-पाँच लाख और घायलों को दो-दो लाख।

"बाप रे...!" पास खड़े लल्लन ने आश्चर्य से कहा, "यहाँ दिन-रात मेहनत करके भी स्साला कुछ नहीं मिलता! उधर रेल दुर्घटना में मृतकों को पाँच-पाँच लाख!"

"काश! मृतकों और घायलों में हम भी होते!" लल्लन की बातों के समर्थन में जैसे कलवा धीरे से बुदबुदाया हो। काके के साथ, सिकन्दर मिर्ज़ा भी कलवा को आश्चर्य से देखने लगे।

मेरे हाथ से चाय का गिलास छूट गया और मैंने अपने जिस्म पर एक झुरझुरी-सी महसूस की।

•••

मुश्किल समय

चिलचिलाती धूप ने नौ बजे के समय को ऐसा बना दिया है कि मानो जेठ की दोपहरी का वक़्त हो। ऊपर से वातावरण में उमस। हवा का कहीं नामोनिशान नहीं। जो पसीना निकल रहा है। उससे कपड़े चिपचिपे से हो गए हैं। घर के भीतर कूलर-पँखे भी कक्ष को ठण्डा रख पाने में नाकाम साबित हो रहे हैं। इक्का-दुक्का लोग-बाग ही गली में आते-जाते दिखाई दे रहे हैं। बेचारे जो मज़दूर हैं, मजबूरीवश बेरहम मौसम की मार सहते हुए भी काम करने को विवश हैं।

"अरे लखनवा, मैं कई दिनों से देख रहा हूँ। तुम जितना कमाते हो। उसे खाने-पीने में खर्च कर देते हो। कुछ भी भविष्य के लिए बचाकर नहीं रखते!" फावड़े से गड्ढ़े की मिटटी निकालते हुए साथी मज़दूर राम आसरे ने मुझसे कहा।

मैं मुस्कुरा दिया, "ज़रा तसला उठाने में मेरी मदद करो, राम भाई।" मैंने उसके सवाल का जवाब देने की जगह, उससे मिटटी भरा तसला उठाने में सहयोग करने को कहा।

पूर्व की भांति मिटटी भरा तसला सर पर उठाये मैं मकान के पीछे खाली प्लाट में उसे पुनः खाली कर आया था। जहाँ अब गड्ढ़े से निकाली गई मिटटी का ऊँचा ढेर लग गया था। थकावट और पसीने से चूर मैंने ख़ाली तसला भरने के लिए पुनः राम आसरे के सामने फेंका। सुस्ताने ही लगा था कि तभी मालिक मकान की दयालू पत्नी चाय-बिस्कुट लेकर आ गई।

"लो भइया चाय पी लो।" मालकिन ने चाय-बिस्कुट की ट्रे मेरे आगे फर्श पर रखते हुए कहा।

"भगवान आपका भला करे मालकिन।" मैंने मुस्कुराकर कहा, "थोड़ा फ्रिज का ठंडा पानी मिल जाता।"

"हाँ मैं लेके आती हूँ।" कहकर वह भीतर गई। कुछ देर बाद वह पानी की ठंडी बोतल के साथ पुनः प्रकट हुई।

"लगता है आज भर में नीव की खुदाई का काम पूरा हो जायेगा। कल से ठेकेदार और मज़दूर लगा कर बुनियाद का काम चालू कर देगा।" पानी की बोतल थमाते हुए मालकिन ने मुझसे कहा।

"जी ... आजभर में बुनियाद का काम पूरा हो जायेगा।" मैंने पानी की बोतल का ढक्कन खोलते हुए कहा। तत्पश्चात मालकिन भीतर चली गई।

ठंडा पानी पीकर मेरे शरीर में प्राण लौटे। राम आसरे भी फावड़ा वहीं छोड़ मेरे पास आ गया। हम दोनों मज़दूर भाई अब चाय-बिस्कुट का लुत्फ़ लेने लगे।

"तुम हमरी बात के उत्तर नहीं दिए लखन भाई। आने वाले मुश्किल बख़्त की ख़ातिर पैसा काहे नहीं बचाते।" राम आसरे ने श्वान की भांति 'चप-चप' करके बिस्कुट चबाते हुए पुरबिया मिश्रित हिंदी में कहा।

"तुम अच्छा मज़ाक कर लेते हो राम भाई। भला मज़दूर की ज़िंदगी में कोई अच्छा वक्त है। उसके लिए तो सब दिन ही मुश्किल भरे हैं।" मैंने ठहाका लगाते हुए कहा, "इसी बात पर एक शेर सुनो– आगाह अपनी मौत से कोई बशर नहीं। सामान सौ बरस का है, पल की ख़बर नहीं।" मैंने एक अति-प्रसिद्ध शेर पढ़ा था। पता नहीं राम आसरे उसका अर्थ समझा भी था या उसके सर के ऊपर से सब गुज़र गया। दोनों चुपचाप चाय पीने लगे। इस बीच हलकी-सी चुप्पी वातावरण में पसर गई थी। घर के अंदर से आती टीवी की आवाज़ इस चुप्पी को भंग कर रही थी। मालकिन टीवी पर कोई सीरियल देख रही थी।

"टीवी और बीवी अपन के नसीब में नहीं है! लखन भाई।" राम आसरे ने किस्मत को कोसते हुए कहा, "बस फावड़ा, गैती और तसला ही अपना मुकद्दर है।" राम आसरे ने मेरे कहे शेर पर तो कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की मगर मालकिन के टीवी की आवाज़ सुनकर वह यह सब बोला।

"सामने ऊँची बिल्डिंग देख रहे हो राम भाई। कभी गए हो उसमे।" मैंने आठ मंज़िला ईमारत की ओर इशारा किया।

"हाँ कई बार! लिफ़्ट से भी और ज़ीना चढ़कर भी।" राम आसरे ने अगला बिस्कुट चाय में डुबोया और एक सैकेंड में अजगर की तरह मुंह से निगल लिया।

"राम भाई, अगर कमाई की रफ़्तार की बात करूँ तो वह सीढ़ी से धीरे-धीरे चढ़ने जैसा है। जबकि महंगाई लिफ़्ट की रफ़्तार से निरंतर भाग रही है। हम कितना भी चाह लें। कितना भी कर लें। हमारे सारे उपाय मंहगाई की रफ़्तार को पकड़ने के लिए निरर्थक होंगे।"

"फिर भी बीमार पड गए तो क्या होगा?" राम आसरे ने मेरी ओर प्रश्न उछाला।

"बीमार पड़ गए तो वही होगा जो मंज़ूर-ए-खुदा होगा।" मैंने उसी टोन में कहा, "तुम्हे एक किस्सा सुनाता हूँ। तनिक बीड़ी तो सुलगा लो। काफ़ी तलब लगा है।"

मैंने फ़रमाईश की थी कि राम आसरे ने तपाक से दो बीड़ियाँ सुलगा लीं। शायद मुझसे ज़्यादा धूम्रपान की आवश्यकता उसको थी। दोनों कस खींचने लगे।

धुआँ उड़ाते हुए मैंने कहा, "जापान देश में एक भिखारी था। यह सच्ची घटना लगभग तीस वर्ष पुरानी है। मैंने समाचार पत्र मैंने कहीं पढ़ा था। जापान के उस भिखारी का बैंक एकाउंट भी था। जो पूरी ज़िन्दगी भीख में मिले पैसे को ज़मा करता रहा। ये सोचकर की बुढ़ापे में जब वह कुछ

करने लायक नहीं रहेगा। तब वह ज़मा पूंजी को खायेगा। अच्छे दिनों की मिथ्या कल्पना में रुखा-सूखा खाकर उसने अपना पूरा जीवन गुज़ार दिया। अलबत्ता उसका बैंक बैलेन्स काफ़ी बढ़ता रहा।"
"वाह बड़ा मज़ेदार किस्सा है लखन भाई।" राम आसरे बीड़ी फूंकते हुए बोला, "भिखारी भी भीख का पैसा बैंक में रखता था।"

"जानते हो साठ साल की उम्र में उसकी मृत्यु कैसे हुई?"

"नहीं!"

"सूखी रोटी को पानी भिगो कर खाते हुए जैसा कि वह पिछले चालीस वर्षों से कर रहा था।" बीड़ी का धुआँ राम आसरे के चेहरे पर छोड़ते हुए मैंने कहा, "जानते हो उसके बैंक एकाउंट में कितना पैसा था!"

"कितना!" कहते हुए राम आसरे का मुंह खुला का खुला रह गया।

"इतना पैसा कि वह दिन-रात अच्छे से अच्छा भोजन भी खाता तो अगले बीस-तीस वर्षों तक उसका पैसा ख़त्म नहीं होता। लेकिन दुर्भाग्य देखिये अंतिम दिन भी भीख मांगते हुए, सूखी रोटी को पानी से डुबोकर खाते हुए उसकी मृत्यु हुई।" कहकर मैंने पुनः बीड़ी का कस खींचा।

"ओह, बहुत बुरा हुआ उसके साथ। बेचारा सारी उम्र ज़मा करता रहा मगर एक भी पैसे को खा न सका।" राम आसरे ने ऐसे संवेदना व्यक्त की, जैसे वह खुद वह भिखारी हो।

"कमोवेश हम सब भी जापान के भिखारी जैसा ही जीवन जीते हैं। भविष्य की सुखद कल्पना में अपने वर्तमान को गला देते हैं। हमारी मौत भी किसी दिन फुटपाथ पर सूखी रोटी को पानी से निगलते हुए होगी।"

"तो क्या बचत करना गुनाह है?" राम आसरे ने ऊँची आवाज़ में कहा।

"अरे जो खाते-पीते आसानी से बच जाये। वह बचत होती है न कि शरीर को गला-गलाकर बचाने से।" मैंने गमछे से अपने माथे का पसीना पोछते हुए कहा।

"सही कहते हो लखन भाई।" राम आसरे ने सहमति जताई और बुझी बीड़ी को नीचे फैंक कर चप्पल से मसल दिया।

"इतना जान लो राम भाई। भरपूर मेहनत के बावजूद मज़दूर को एक चौथाई रोटी ही नसीब है। जबकि उसे एक रोटी की भूख है। यदि अच्छे से खाएंगे-पिएंगे नहीं तो हमारा मेहनत-मसकत वाला काम ही, हमारा काम तमाम कर देगा।" कहकर मैंने बीड़ी का आखिरी कस खींचा और बची हुई बीड़ी को एक तरफ फैंक दिया ये कहकर, "चलो बाक़ी का बचा काम भी जल्दी ही निपटा डालें। आज की दिहाड़ी मिले तो चिकन...।" इतना कहकर मैं पलटा ही था कि दीवार की ओंट से निकलकर ठेकेदार दीनदयाल हमारे सम्मुख आ खड़ा हुआ।

"ओह! तो ये काम चल रहा है, तुम दोनों का!" ठेकेदार दीनदयाल कड़क आवाज़ में बोला।

"नमस्कार, आप कब आये ठेकेदार जी?" मैंने सम्भलते हुए कहा।

"जब तू रामआसरे को जापानी भिखारी की कहानी सुना रहा था।" दीनदयाल उसी रौब में था।

"नहीं ठेकेदार जी, दो मिनट सुस्ताने के लिए बैठे थे। चाय पीते हुए थोड़ी गपशप चल रही थी।" मैंने सफ़ाई दी।

"ख़ुद ही देख लीजिये दीनदयाल जी, आज सुबह से घण्टेभर में कितनी सारी मिटटी खोदी है।" रामआसरे ने विन्रम स्वर में बीच-बचाव करते हुए कहा।

"बहुत पर निकल आये हैं तुम दोनों के।" दीनदयाल बोले, "एकाद महीना घर बैठा दूंगा तो भूखे मरोगे। फिर जापान के भिखारी की तरह खाना सूखी ब्रेड पानी में भिगो कर।" दीनदयाल बोला, "आज सारी नीव न खुदी तो दियाड़ी तो मिलने से रही। पिछली दियाड़ी भी नहीं दूंगा। तुम दोनों रोज़ ही बातों में अपना टाइम पास करते हो। तभी तो हफ़्तेभर में भी नींव की खुदाई ख़त्म नहीं कर पाए।"

"आज आपकी बाइक नहीं दिखाई दे रही है।" मैंने यूँ ही पूछ लिया, "क्या ख़राब हो गयी है?"

"ख़राब नहीं हुई बेटा, मैंने जानबूझकर गली के बाहर खड़ी की है। ताकि दबे पाँव आकर पता कर सकूँ कि तुम दोनों हरामख़ोर काम कर रहे हो या कहीं गप्पों में ही लीन रहते हो।" दीनदयाल की अकड़ बरक़रार थी।

"आओ ठेकेदार जी अंदर आ जाओ।" शोर-शराबा सुनकर मेमसाहब ने गेट खोला तो सामने ठेकेदार को देखकर बोली, "आप भी चाय पी लो।"

"नहीं बहन जी, अभी बिल्डर के पास भी जाना है।" दीनदयाल ने भीतर आने में अपनी असमर्थता ज़ाहिर की, "सीमेन्ट-सरिया महंगा होने वाला है, इसलिए आज ही ख़रीदना पड़ेगा।" फिर हमारी तरफ़ देखकर दीनदयाल मेमसाहब से पूछने लगा, "बहनजी, ये दोनों काम काज तो ठीक-ठाक कर रहे हैं न!"

"हाँ भइया, दोनों काफ़ी मेहनती हैं।" मेमसाहब ने रामआसरे और मेरी तरफ़ देखकर जवाब दिया। हमने आँखों से ही मेमसाहब का आभार व्यक्त किया।

"अच्छा मैं चलता हूँ।" कहकर दीनदयाल बिना एक पल गंवाए वहां से निकल गया। पुनः गेट बंद करके मेमसाहब अंदर टीवी देखने में व्यस्त हो गई। गली फिर से सुनसान हो गई। फिर से राम आसरे के फावड़े चलाने की आवाज़ सुनाई देने लगी।

"इतना करने के बावज़ूद भी कितना सुनना पड़ता है।" फावड़ा रोककर राम आसरे से तनिक सांस लेते हुए कहा, "थू है ऐसी ज़िन्दगी पर।"

"कोई बात नहीं राम भाई!" मैंने ढांढस बंधाया, "अच्छा हो या बुरा, वक़्त सभी का कट ही जाता है। हमें जापान का भिखारी बनाएगा स्साला दीनदयाल। ख़ुद सूखी रोटियाँ खाकर वक़्त गुज़ार रहा है। सारा पैसा प्रॉपर्टी पर लगा रहा है। औलाद है नहीं स्साले की। कल को मर जायेगा तो नौकर-चाकर ऐश करेंगे स्साले की प्रॉपर्टी पर।" मैंने अपनी भड़ास निकली।

"लखन भाई, स्साला ग़रीबों का शोषण करता है। हमारी दियाड़ी काटेगा, एक दिन कीड़े लग-लगके मरेगा।" राम आसरे ने भी अपनी भड़ास निकालते हुए कहा और टपकते पसीने के बावज़ूद तेज़-तेज़ फावड़ा चलाने लगा।

•••

नई परिभाषा

“अस्सलाम वालेकुम, भाईजान!” उसने बड़े अदब से कहा।

"वालेकुम अस्सलाम!" आलम ने मुस्कुराते हुए अपरिचित का अभिवादन स्वीकार करते हुए कहा।

"भाईजान मेरा नाम रहमान है। मैंने सुना है कि दंगों में आपके वालिद ...." कहते-कहते रहमान रुक गया। आलम के चेहरे पर पुराने ज़ख़्म हरे हो गए।

"कबूतरों को दाना डालते हुए, मुझे बड़ा सकूँ मिलता है। लीजिए, आप भी इस नेक काम को अंजाम दीजिये।" आलम ने अपने चेहरे पर मुस्कान लाते हुए कहा और रहमान की तरफ़ दानों से भरा थाल बढ़ाया। नेकी से जो चमक और ऊर्जा पैदा होती है। रहमान को आलम के चेहरे पर इस वक्त वही चमक दिखाई दी।

"तुम्हे ये शौक कबसे पैदा हुआ?" रहमान ने चंद दाने कबूतरों के समूह की ओर फैंकते हुए कहा।

"मेरे दादा जान से।" आलम ने मुस्कुराते हुए कहा।

"और तुम्हारे अब्बा!" कहते-कहते रहमान फिर रुक गया।

"वो गोधरा कांड के बाद भड़के दंगों में मारे गए थे।" आलम ने कबूतरों की तरफ़ दाना फैंकते हुए अति-शांतिपूर्वक कहा।

"क्या तुम्हारे मन में बदले की भावना पैदा नहीं हुई?" रहमान ने अपना लहजा थोड़ा सख्त किया।

"क्या किसी बेकसूर को मार देने से बदला पूरा हो जाता है। क्या मेरे अब्बू ऐसा करने से लौट आते?" रहमान के प्रश्न के उत्तर में आलम ने ही उससे एक और प्रश्न किया।

"नहीं ... लेकिन इससे तुम्हारे दिल को तसल्ली मिलती।"

"नहीं ... कोई तसल्ली हांसिल नहीं होती। रहमान भाई आपकी सोच एकदम ग़लत है! नफरत से कभी नफरत नहीं मिटाई जा सकती।" आलम ने उसी सादगी से जवाब दिया, "रहा सवाल तसल्ली का तो रोज़ाना कबूतरों को दाना डालने से मुझे जो सकून मिलता है उसका फायदा ज़ाहिर तौर से मेरे वालिद की रूह तक भी पहुँचता है।"

"बेशक, अल्लाह के नेक बन्दे हो आप!" रहमान ने आकाश की ओर देखते हुए कहा, "मुझे एक किस्सा याद आ रहा है आलम भाई। दिल्ली के जे.एन.यू. में पढ़ाई के दौरान मेरी एक बार ए.बी.वी.पी. के एक छात्र विष्णु से बहस हो गयी थी। वो कह रहा था, "आप हमारे कर्मयोगी हिन्दू नेता जी की सफलता का रहस्य जानते है, रहमान भाईजान?" तो मैंने न में सिर हिलाया, तो फिर वो आगे बोला, "अल्पसंख्यक मुस्लिम उनका विरोध करते हैं! और उनसे काफ़ी नफ़रत भी! लेकिन बहुसंख्यक हिन्दू उनसे प्रेम करते थे, हैं और करते रहेंगे! यदि अल्पसंख्यक भी उन्हें सम्मान देने लगते तो फिर वह हम बहुसंख्यकों के बीच लोकप्रिय नहीं होते।"

"विष्णु भाई, तुम चाहे जो भी दलील दे लो! जो झूठा-मक्कार है, उसको हमेशा ग़लत ही कहा जाएगा, चाहे हम अल्पसंख्यक मुस्लिमों में हो या चाहे वो अधिक संख्या वाले हिन्दुओं में हो?" विष्णु से बहस करते हुए उस रोज़, हमेशा शान्तिप्रिय रहने वाला रहमान यकायक आक्रोश से भर गया था। वहाँ कैंटीन में उपस्थित अन्य छात्रों ने पहली बार रहमान को अशान्त, उत्तेजित और क्रोधित अवस्था में देखा था। उस रोज़ सभी शान्ति भाव से दोनों के मध्य में हो रही बहस को सुन रहे थे। कुछ छात्र वामपन्थ के स्पोर्टर थे तो कुछ दक्षिणपन्थी भी।

"सर जी, आपके या मेरे चाहने या कहने से कुछ नहीं होता!" मेरे आक्रोश को देखते हुए, विष्णु ने कुछ विनम्र होते हुए कहा, "वास्तविकता यही है कि हमारे नेताजी सत्ता में 'विरोध' के चलते ही हैं और तब तक रहेंगे! जब तक यह विरोध ज़ारी रहेगा! 'गोधरा' क्रिया की प्रतिक्रिया थी। यदि बोगी नहीं जलाई गई होती, तो 2002 में गोधरा प्रकरण नहीं हुआ होता। ठीक ऐसे ही जैसे 1984 में इन्दिरा गाँधी जी की हत्या, दंगों का कारण बनी। दोनों जगह दंगों के लिए सत्ता पक्ष ही ज़िम्मेदार हैं! बुद्धिजीवि होने के नाते हमें हर वस्तु की सही समीक्षा और जानकारी होनी चाहिए! तू-तू मैं-मैं करके कोई लाभ नहीं! सत्य यही है! 2024 में हमारे नेता जी इसी विरोध के चलते फिर सत्ता में होंगे!"

"गोधरा जिसने किया उसको सबके सामने फांसी दो, लेकिन 2000 से ज़्यादा बेगुनाहों को किसने मारा, क्या हिंदुओ ने?" रहमान का आक्रोश बरक़रार था विष्णु पर, "बच्चियो का बलात्कार किसने किया? माओं का पेट फाड़कर बच्चों को, किसने ज़िंदा जलाया...? यह सब आपके नेता ने किया और अगर आप ऐसे दरिंदे को अपना नेता मानते हो तो, आप भी ऐसे ही दरिंदे नहीं हो क्या?"

"देखिये रहमान भाईजान, दंगा कहीं भी हो! कभी भी हो, बेगुनाह लोग ही मारे जाते हैं। 1947 में लाखों हिन्दू-सिख-मुसलमान मारे गए थे। वो सब क्या अपराधी थे! उसके लिए कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ज़िम्मेदार थे, क्योंकि भारत-पाकिस्तान में यही सत्ता में थे।" विष्णु ने सयम के साथ अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया, "रही बात हज़ारों दंगे तब से अब तक हो चुके हैं! दंगों का इतिहास आज़ादी से बहुत पहले का है! आप विकिपीडिया में पढ़ सकते हो! होनी बलवान होती

है। उस होनी को टालने का काम निःसंदेह सत्ताधारी लोगों के सिर होता है। 1984 में जो सिख भाइयों का क़त्लेआम दिल्ली में हुआ। या 1980 के अंत में जो खालिस्तान आन्दोलन चला। जिसके तहत हिन्दू-सिखों के मध्य दरार डाली गई। और पंजाब में एक पूरा दशक आतंकवाद से त्रासद रहा। यही हाल कश्मीर का था, आज़ादी के बाद से ही वहाँ शोले सुलगते रहे और सत्ताधारियों ने उन शोलों को हवा दी। धारा 370 और 35 ए हटने तक वहाँ 70 वर्षों में कितने ही निर्दोष शहरी व हमारे सैनिक मारे गए थे, ये भी देश जनता है। गोधरा का सच-झूठ भी मिडिया, क़िताबों, पत्र-पत्रिकाओं में बिखरा पड़ा है। आप अपने हिस्से का सच तलाश लीजिये भाईजान, जिससे आपको तसल्ली मिले। हर कोई अपने हितों को ध्यान में रखकर ही सच की व्याख्या करता है। एक पक्ष हमेशा ही हर चीज़ को जायज़ ठहरता है और दूसरा पक्ष हमेशा उसका विरोध करता है। मगर एक बात विष्णु ने उस रोज़ सही कही थी।"

"क्या?" अब तक मूक दर्शक बना आलम रहमान की बातें बड़े ध्यान से सुन रहा था।

"कोई जन्म से साम्प्रदायिक या धर्म निरपेक्ष नहीं होता! हर कोई अपनी सुविधा के अनुसार इसे इस्तेमाल करता है। नेता किसी का सगा या बैरी नहीं होता! कोई भी नेता जिस गुण्डे को अपने हक़ में इस्तेमाल करता है। वहीं विपरीत परिस्थिति उतपन्न होने या उससे अपना काम निकल जाने के बाद एन्काउंटर में मरवा भी देता है। अख़बार हो, समाचार मीडिया चैनल हों, या कोई भी सोशल प्लेटफ़ार्म सब अपने-अपने हितों की रक्षा करते हैं और अपने-अपने पक्ष के झूठ और सच की तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। आप किसी भी जात-धर्म पर विश्वास नहीं कर सकते!" आलम उसी तन्मयता व गंभीरता के साथ रहमान की बातें सुन रहे थे। इस पर अपनी कुछ प्रतिक्रिया देना ही चाहते थे कि उनकी बेटी की आवाज़ ने उनका ध्यान भंग किया।

"अब्बू .... तुम्हारी चाय।" प्याला आलम के सामने बढ़ाते हुए आठ-नौ बरस की एक बच्ची वहां प्रकट हुई।

"बेटी एकता, एक प्याला और ले आओ। ये रहमान चाचा पिएंगे।" आलम ने चाय का प्याला रहमान को थमाया।

"जी अब्बू ..." कहकर बिटिया पुनः घर के अंदर चली गई।

"आपकी बच्ची का नाम एकता? ये तो हिन्दू नाम जान पड़ता है!" कहकर रहमान ने चाय की चुस्की ली।

"हिन्दू की बेटी है तो हिन्दू नाम ही होगा!" आलम ने ठहाका सा लगाया।

"मतलब ... मैं कुछ समझा नहीं।" रहमान ने हैरानी जताई।

"गोधरा में अयोध्या से लौट रहे कार सेवकों की जिस बोगी को आग के हवाले किया गया था। उसमे एकता के पिता भी ...." आगे के शब्द आलम के मुंह में ही रह गए थे।

"ओह! यतीम बच्ची को गोद लेकर आपने बड़ा नेक काम किया आलम भाई। आप फरिश्ता...." रहमान ने इतना कहा ही था कि बच्ची पुनः एक प्याला चाय लेकर हाज़िर थी।

"अब्बू आपकी चाय।" नन्ही एकता ने मुस्कुराते हुए कहा।

"एकता, अपनी अम्मी को कहना, रहमान चाचा भी दिन का भोजन हमारे साथ करेंगे।" चाय का प्याला पकड़ते हुए आलम बोला।

"ठीक है अब्बू।" कहकर एकता अंदर चली गई।

लगभग दो-तीन मिनट तक वातावरण में चुप्पी सी छाई रही। दोनों के चाय पीने का स्वर, कबूतरों के गुटर-गूं का स्वर अब स्पष्ट रूप से सुना जा सकता था।

"भाईजान, आज आपने मुझे जीवन की नई परिभाषा समझा दी।" खाली कप ज़मीन पर रखने के बाद, कहते हुए रहमान ने जेब से रिवॉल्वर निकाली और आलम के चरणों में डाल दी।

"ये सब क्या है रहमान भाई?" आलम हैरान थे।

"मुझे इन्डियन मुजाहिदीन ने आपके अब्बू के कातिलों के बारे में मालुमात हांसिल करने और उसके बाद उन कातिलों को सजा देने के लिए भेजा था।" रहमान ने अपनी सच्चाई ज़ाहिर की।

"और अब क्या करोगे?" आलम ने पूछा।

"अब उम्रभर अल्लाह की इबादत और लोगों की खिदमत करूँगा।" रहमान ने खुशदिली से कहा।

"आमीन!" और दुआओं के लिए आलम के हाथ अपने आप उठ गए।

●●●

गंगा का फ़ोन

"भाई नमस्ते!" ताऊ जी की लड़की गंगा का फ़ोन था।

गंगा दिल्ली के कालकाजी इलाके में डी० डी० ए० फ्लैट्स में रहती है। यहाँ संयुक्त परिवार में पली-बढ़ी गंगा, वहाँ फ़्लैट में अकेले जीवन गुज़ारने को बाध्य है। इसलिए जब भी वह अकेलेपन से उक्ता जाती है तो अपनी बोरियत मिटाने के लिए वह फ़ोन पर बातचीत करके अपना जी बहला लेती है। गंगा बहन, अपने विवाह पूर्व जब हमारे संयुक्त परिवार का हिस्सा थी, तो अक्सर मुझसे साहित्यिक बहस भी किया करती थी। मेरे निजी पुस्तकालय (जो कि एक छोटा-सा किताबों का रैक भर ही है) से वह देश-विदेश के चर्चित साहित्यकारों की पुस्तकें ले जाती थी। मसलन ओ हेनरी, चेखव, टालस्टाय, गोर्की, मोपासा, शरतचंद, प्रेमचंद, मोहन राकेश आदि की कहानियां और जयशंकर प्रसाद, निराला, मुक्तिबोध, धूमिल, पाश, दुष्यंत, अदम, मीर, ग़ालिब आदि कवियों की विशुद्ध हिन्दी साहित्यिक कविता पुस्तकें व ख़ालिस उर्दू अदब के शा'इरों की हिन्दी में प्रकाशित शेर-ओ-शा'इरी की पुस्तकें। ये सब पुस्तकें उसने खूब रूचि से पढ़ी थीं। इन लोगों द्वारा लिखे गए साहित्य पर अच्छी-खासी बहस भी अक्सर हम दोनों भाई, बहन के मध्य होती थी। शादी के बाद अब उतना पढ़ना नहीं हो पाता है, लेकिन गंगा बहन के पास अब भी मेरी कुछ किताबें और पत्र-पत्रिकाएं पड़ी हैं। मुझे गंगा के साथ साहित्यिक बहस के कई क्षण अभी भी याद हैं।

"प्रेमचन्द बहुत अच्छे कथाकार थे।" एक बार गंगा बहन चाय का घूंट पीने के उपरांत बोली।

"होंगे।" मैंने लापरवाही से कहा, "लेकिन मुझे मोहन राकेश पसंद हैं।" और मैं चाय पीने लगा।

"प्रेमचंद ने तीन सौ कहानियाँ लिखी हैं जबकि मोहन राकेश की कहानियों की संख्या पचास भी नहीं है।" गंगा बोली।

"मेरी भोली बहन कितनी बार तुम्हें समझाया है कि, साहित्य में ज़्यादा या कम लिखे का उतना महत्व नहीं है। जितना महत्व इस बात का है कि ठोस, सार्थक और उत्कृष्ट किसने लिखा है।"

"क्या प्रेमचंद उत्कृष्ट नहीं हैं?"

"मैंने ऐसा तो नहीं कहा। अच्छा एक बात बताओ, प्रेमचंद की जो उत्कृष्ट कहानियाँ हैं उनकी संख्या मुश्किल से कोई पच्चीस या तीस ठहरती होगी। लगभग ढाई सौ कहानियाँ वह न भी लिखते, तो कोई फर्क नहीं पड़ता! उनकी ख्याति के लिए कफ़न, पूस की रात, बूढी काकी, सदगति, नमक का दरोगा, पंच परमेश्वर, ईदगाह, दो बैलों की कथा, कजाकी, बड़े घर की बेटी आदि-आदि कुछेक और कहानियाँ ही ठीक हैं।"

"अरे वाह भइया, आपने तो मुंशी जी की लगभग सारी श्रेष्ठ कहानियाँ गिनवा दी हैं।" गंगा के चेहरे पर विचित्र-सी ख़ुशी थी।

"इनके अलावा इक्का-दुक्का और श्रेष्ठ कहानियां होंगी, जो पाठकों के दिमाग में रची-बसी हैं।" उस दिन बहस करते हुए एक प्याला ठंडी चाय को डेढ़ घंटे में जाके ख़त्म किया।

"कवितायें मर चुकी हैं या मर रही हैं। छंदों में रची कविता हो या छंदमुक्त, दोनों लगभग मृतप्राय हो चुकी हैं।" ऐसे ही एक बार भोजन करते समय कवियों पर बहस छिड़ गई। गंगा ने रोटी का कौर (टुकड़ा) तोड़ते हुए कहा।

"ऐसी बात नहीं है गंगा बहन। क़ायदे से लिखी हर चीज़ ज़िंदा रहेगी। मीर-ग़ालिब आज भी प्रासंगिक हैं। दुष्यंत और अदम की प्रगतिशील ग़ज़लों में जो धार है। उसे आज भी वैसे ही महसूस किया जाता है। जैसा कि वह अपने वजूद में आने के वक्त थी। क्या पाश और धूमिल की कविताओं को हम भुला सकते हैं? कदापि नहीं।" ख़ैर ये सब पुरानी बातें हैं और इन सबका ही ज़िक्र होता रहा तो पूरा एक उपन्यास अथवा महाकाव्य बन जायेगा। फिलहाल अतीत की बातों को छोड़कर मैं पुनः वर्तमान में लौटा। इस बार लगभग हफ़्तेभर बाद गंगा का फ़ोन आया था। अभी भी घर के सभी सदस्यों से बात करते-करते गंगा को कई बार आधे घण्टे से एक घंटे तक की बातचीत फ़ोन पर ही करनी पड़ती है। मुझे इस बात का थोड़ा संतोष है कि अब फ़ोन पर लम्बी-लम्बी साहित्यिक बहस नहीं हो पाती है।

"कैसी हो गंगा बहन?" मैंने स्नेहिल मुस्कान बिखेरी, "हमारे जीजाजी और भांजे।"

"सभी कुशल से हैं भइया, मगर कोई भी घर में टिकते कहाँ हैं?" गंगा ने मायूसी से कहा।

"मैं समझा नहीं।" मैंने हैरानी से पूछा।

"आज इतवार है मगर, तुम्हारे जीजाजी ऑफिस में ओवर टाइम कर रहे हैं।" गंगा बोली।

"ठीक तो है बहन, अतिरिक्त आमदनी से तो फ़ायदा ही है। वरना शहरों में एक आदमी की कमाई से गुज़ारा कहाँ है?" मैंने चुटकी लेते हुए कहा, "अच्छा हमारे दोनों भानजे रमेश और सुरेश कहाँ हैं?"

"सुरेश का क्रिकेट मैच है और रमेश ट्यूशन पढ़ने गया है।" गंगा ने अपनी व्यथा कही, "खैर मेरी छोडो! बताओ आप लोग कैसे हैं और क्या कर रहे हैं?"

"ईश्वर की कृपा-दृष्टि है बहन। मंझले चाचा के साथ ताश खेल रहा हूँ।" मैंने जम्हाई लेते हुए कहा, "और बगल में हमेशा की तरह विक्रम भइया और छोटे चाचा जी बिसात बिछाकर शतरंज खेलने में व्यस्त हैं। मगर छोटे चाचाजी को पता नहीं है विक्रम भइया का घोड़ा ढ़ाई की जगह साढ़े तीन घर चलता है।" मैंने हँसते हुए कहा और अगला पता फैंक दिया।

"झूट बोलता है दीदी ये।" विक्रम भाई ने चाचा का प्यादा काटते हुए कहा ही था कि तभी प्लास्टिक की एक गेंद आकर मंझले चाचाजी के गाल पर लगी। चश्मा टूटते-टूटते बचा।

"अबे गोलू के बच्चे, घर को फ़िरोज़शाह कोटला का मैदान बना रखा है, जो यहाँ क्रिकेट खेल रहा है।" मैंने अपने लड़के को डांटते हुए कहा, "अभी तेरे शाट से मंझले दादा जी का चश्मा फूट जाता।"

"ख़बरदार जो तूने मेरे पोते को डांटा तो ..." कहकर चाचाजी ने बॉल गोलू की तरफ़ उछाल दी और ताश का अगला पता मेरे आगे ज़मीं पर फैंक दिया।

"आपने ही सर में चढ़ा रखा है बच्चे को।" मैंने मोबाईल पर पुनः कहा, "सुन रही हो न गंगा बहन, चाचाजी के सामने अपने बच्चे को डांट भी नहीं सकता।"

"बहुत बढ़िया भैया। असल में आप लोग ही जीवन जी रहे हैं।" गंगा ने बड़ी जीवंतता के साथ कहा।

"कुछ खास बात थी क्या?" मैंने पुनः पूछा।

"नहीं आप सब लोगों से बात करने की इच्छा हो रही थी।" गंगा ने कहा, "ज़रा भाभी से बात करवा दो भइया।"

"ओके, ज़रा होल्ड करो। तुम्हारी भाभी रोज़ की तरह टी.वी. पर सुबह से ही सास-बहु के सड़े से ड्रामे देख रही है। काम की न काज की, हमेशा दोस्त टी.वी. की।" मैंने शीला के लिए कहा।

"लेकिन सही कहावत तो 'दुश्मन अनाज की' है।" गंगा ने सही कहावत की जानकारी दी।

"जानता हूँ बहन, लेकिन समय के साथ-साथ कहावत भी बदलनी चाहिए। जैसे 'ऊँट के मुँह में जीरा' की बजाये 'हाथी के मुँह में खीरा' होना चाहिए।" मैंने हंसी का माहौल बनाने की कोशिश की। इसका असर यह हुआ कि फ़ोन पर गंगा के अलावा मेरे साथ अगल-बगल में बैठे सभी लोग हंस पड़े। तत्पश्चात मैंने अपनी धर्मपत्नी जी को पुकारा, "शीला ... तुम्हारे लिए गंगा बहन का फ़ोन है।" और श्री मति जी को फ़ोन थमाने के उपरान्त मैं पुनः ताश खेलने में व्यस्त हो गया। जबकि बगल में विक्रम भैया और छोटे चाचा जी गंभीरता पूर्वक शतरंज की बिसात पर झुके हुए थे।

"अरी गंगा बहन तुम्हे पता है संध्या ने अपने जुड़वाँ बच्चों में से एक बच्चा अपने भाई को गोद दे दिया।" शीला ने फ़ोन पर गंगा को बड़े ही ख़ुफ़िया ढंग से जानकारी दी।

"कब हुआ उनके जुड़वां बच्चा!" गंगा हैरान थी।

"परसों ही।" शीला ने अगला रहस्योद्घाटन करते हुए कहा।

"ताजुब है, विक्रम भइया ने भी मुझे नहीं बताया कि उसकी साली जुड़वां बच्चे हुए हैं।" गंगा ने जैसे अफ़सोस व्यक्त किया, "अब तो मैं पराई हो गई हूँ। मुझे क्यों आप लोग अपने सुख-दुःख में शामिल नहीं करते?"

"अरे मैं विक्रम की साली की बात नहीं कर रही।" शीला झुंझलाहट में भरकर कहा।

"फिर किसकी बात कर रही हो?" गंगा हैरान थी।

"मैं तो टीवी सीरियल 'दिया और बाती' की नायिका सन्ध्या राठी की बात कर रही हूँ।" शीला ने रहस्य से पर्दा हटते हुए कहा।

"धत तेरे की! भाभी तुम नहीं सुधरने वाली। मैं तुमसे फ़ोन पर घर के हालचाल पूछ रही हूँ और तुम टीवी सीरियलों की दुनिया में खोई हो। भइया ठीक ही कहते हैं 'हमेशा दोस्त टीवी की'"

गंगा ने मूड अपसेट हो जाने अंदाज में कहा, "अच्छा, खाने में आज क्या-क्या बनाया है? इधर-उधर की कई बाते गंगा और शीला ने आपस में की। लगभग पंद्रह मिनट गुज़र गए। इसके पश्चात एक हाथ से होता हुआ मोबाइल दूसरे हाथों में पूरे दो मंज़िलों का सफ़र तय करता रहा। प्रथम तल पर मेरा और मंझले चाचा का परिवार, ताऊ-ताई और मम्मी-पापा रहते हैं। और बैठक में सभी परिवारों के बच्चे पढ़ते-खेलते, खाते-पीते, रोते-धोते, सोते-जागते और संयुक्त रूप से टी.वी. देखते रहते हैं। दूसरे तल पर बाकि सभी भाई-भाभियाँ, बड़े चाचा और छोटे चाचा का परिवार निवास करता है। इस संयुक्त परिवार की नीव पूज्य दादाजी ने बरसों पहले डाली थी। दादा-दादी अब केवल बैठक में फोटो बनकर दीवार पर टंगे हैं। जिन पर चन्दन के हार पड़े हैं।

"कैसी हो गंगा बेटी?" हमारी माताश्री के हाथों में मोबाइल आया पुनः गंगा के हालचाल पूछने से बातचीत क्रम शुरू हुआ।

"अब बुढ़ापे में क्या होना है? जबसे डाक्टर ने शुगर बताई है।मुँह का सारा स्वाद चला गया है। मीठा खाने को दिल करता है मगर खा नहीं सकते। तेरे चाचा जो पहरेदार बनकर बैठे रहते हैं सर पर। ऊपर से ब्लेड प्लेसर भी रहता है कभी-कभी।"

"अरी भगवान ... ब्लड प्रेशर बोलते हैं, ब्लेड प्लेसर नहीं। क्या चहरे की हज़ामत बनानी है। इधर ला फ़ोन।" बगल में ही खड़े पिताश्री ने माताश्री की ग़लत अंग्रेजी पर झुंझलाते हुए कहा और मोबाइल अपने कानों से लगा लिया।

"अब हमसे तो न बोली जावे ठीक इन्ग्रेज़ी। हम तो ऐसे ही बोलेंगे ब्लेड प्लेसर।" माताश्री ने भी अपनी भड़ास निकली तो फ़ोन के दूसरी तरफ गंगा भी खिलखिलाकर हंस पड़ी।

"तुम होती अंग्रेज़ों के टाइम पे तो महात्मा गांधी को आंदोलन करने की ज़रूरत न पड़ती। तुम्हारी अंग्रेजी सुनकर ही अंग्रेज़ भाग जाते हिंदुस्तान से।" पिताजी ने माताश्री को अपने अनमोल वचन सुनाते कहा।

"चाचाजी, आप लोगों की नोक-झोंक कभी ख़त्म नहीं होती। धन्य हैं आप लोग।" गंगा ने मुस्कुराते हुए कहा।

"तुम्हें क्या कह रही थी तुम्हारी चाची कि, मीठा नहीं खा सकती? सरासर झूठ बोलती है तेरी चाची, जहाँ मेरी नज़र पलटी नहीं की, वहाँ घपाघप दो-चार चम्मच चीनी मुँह में ठूस लेती है।" पिताश्री फ़ोन पर ही शुरू हो गए, "तेरी चाची तो सुधरेगी नहीं गंगा, अगर पढ़ी-लिखी होती तो हमारे बच्चे पढाई में कमज़ोर नहीं रहते ... आज गोलू का बाप डिप्टी कलेक्टर होता। तेरे मंझले चाचा के साथ ताश न खेल रहा होता।" बाबूजी ने वही रटी-रटाई बात दोहरा दी। जो अक्सर वह मिलने-जुलने वालों से कहा करते हैं। पिताजी स्वयं एक रिटायर्ड क्लर्क हैं, सरकारी नौकरी से। उनको शुरू से ही मुझसे शिकायत रही कि एस.एस.सी. की कोई प्रतियोगिता परीक्षा पास करके मैं भी आसानी से कोई सरकारी नौकरी पा लेता। हालांकि प्राइवेट कम्पनी में मैं एक इंडिज़ाइन कम्प्यूटर ऑपरेटर हूँ और ठीक-ठाक कमा लेता हूँ। ताऊ-चाचा सब सरकारी नौकरी में रहे हैं। इसलिए उन्हें लगता है, वर्तमान पीढ़ी मेहनती नहीं है। अब पिताश्री को कौन समझाए सन 2000 ईस्वी तक आते-आते, आज परिस्थितियाँ काफ़ी भिन्न हो गई हैं। एक मामूली सफाई कर्मचारी के लिए भी मंत्री जी की सिफारिस चाहिए। जैसे कि मंत्री जी का यही काम रह गया है कि कौन शख़्स अच्छी झाड़ू लगा सकता है? वैसे सरकारी नौकरी में सबसे मज़े की नौकरी मंझले चाचा की है।

सी.पी.डब्ल्यू.डी. (केंद्रीय लोक निर्माण विभाग) में लग गए हैं। सारे शनिवार, रविवार ताश खेलने में ही उनका वक़्त बीतता है। हम दोनों ताश के माहिर खिलाड़ी हैं। इसलिए हम दोनों चाचा-भतीजे की आपस में खूब पटती है।

पिताश्री से तमाम प्रवचन और शिकायतें सुनने के बाद गंगा का फ़ोन गया आदरणीय ताऊजी के हाथ में। ताई जी हमेशा उनके पास ही बैठी कुछ न कुछ काम कर रही होती हैं। इस समय पास ही आचार के मर्तबान धूप में रखे हैं। ताई जी बीच-बीच में उन्हें हिला-डुला कर देख रही हैं। बगल में ही थाली में एक सीताफल रखा है। और चाकू भी। ताई जी कभी खाली नहीं रहती हैं। पूरे घर-परिवार के लिए सब्जियां काटना। दाल-चावल में कंकर-पत्थर बीनना इत्यादि काम वही पूर्ण दक्षता के साथ आज भी वही करती हैं।

"हाँ बिटिया कैसी हो?" भावुक होते हुए ताऊ जी बोले।

"ठीक हूँ बाबूजी ... और आप लोग।" गंगा भी भावुक हो उठी।

"अब बुढ़ापे में क्या ठीक होना है? जीवन के आख़री पड़ाव में हैं। जब ईश्वर चाहेगा, चल देंगे।"

"ऐसी बाते मत करो! और मम्मी जी क्या कर रही हैं?"

"आचार की देख-रेख कर रही है। सीताफल बनेगा तो उसको काटने की तैयारी भी चल रही है। तेरी माँ ने कुछ देर पहले तेरी छोटी चाची के साथ आलू-प्याज़ काटे थे। चाची आलू-प्याज़ ले गयी और सीताफल सामने रखकर, सबके लिए चाय बनाने चली गई है। तुझे तो पता ही है, मैं हार्ट पेसेंट हूँ! दवा लेना भूल जाता हूँ, तो कोई न कोई याद दिला देता है। अभी कुछ देर पहले तेरा छोटा चाचा दवाई खिला के गया है। अब वह विक्रम के साथ बैठा शतरंज खेल रहा है। फ़िल्में देखना और शतरंज खेलना, यही दो शौक पाल रखे हैं छोटे ने। साथ रहने का यह फ़ायदा यह है कि औरों को हँसता-खेलता देखकर जीने की चाह बढ़ जाती है। वरना इस उम्र के लोग अकेलेपन का शिकार होकर राम नाम की माला जपते, अपनी मृत्यु का इन्तिज़ार करते रहते हैं। तेरी माँ का टाइमपास भी घर के काम-काज करके हो जाता है! वरना अकेली बैठी बोर हो जाये। लो अपनी माँ से बात करो।" कहकर ताऊजी ने सीताफल काटती अपनी धर्मपत्नी को फ़ोन पकड़ा दिया।

"माँ ठीक हो।"

"हाँ बेटी ... मेरे नाती कैसे हैं और जवाई जी क्या कर रहे हैं?"

"सब ठीक हैं माँ ... तुम्हारे जवाई जी ओवर टाइम कर रहे हैं। एक नाती क्रिकेट खेलने गया है तो दूसरा ट्यूशन पढ़ रहा है।" गंगा ने वही रटे रटाये शब्द दोहराये, "और मैं अकेली बैठी-बैठी बोर हो रही हूँ।"

"अरे क्या वही बोरिंग बाते करके गंगा को पका रहे हो। इधर दो फ़ोन।" छोटे चाचा जो शतरंज की एक बाज़ी करने के बाद बाथरूम करने के बहाने उठे थे। ताई जी को रोने-धोने की बाते करते देख खुद को न रोक सके, "तुझे पता है कल ही जो फ़िल्म रिलीज़ हुई उसमें इरफ़ान का काम अच्छा है।" और हाल ही में रिलीज़ हुई तमाम फ़िल्मों की कहानियां शुरू कर दी छोटे चाचा जी ने, "सलमान को इतने साल हो गए, मगर अभी तक एक्टिंग करनी नहीं आई। हीरो तो ऋतिक और आमिर हैं। अजय देवगन ..."

"क्या छोटे हर वक्त फ़िल्मी बकवास झाड़ते रहते हो या फिर शतरंज की बाज़ी खेलते रहते हो! कभी तो ज़िंदगी में सीरियस रहा करो।" छोटे चाचा को डांट कर बड़े चाचा ने फ़ोन हथिया लिया और गंगा को किसी महान दार्शनिक की भांति उपदेशात्मक बातों घुट्टी पिलाने लगे, "गंगा बेटी मानव जीवन का कुछ लक्ष्य होना चाहिए। मानव का तन, बड़े भाग से मिलता है। इंसान की कर्मयोनी है, तो जानवर की भोगयोनी। केवल खाने, पीने और कमाने के लिए ज़िंदा रहना ही इंसान का जीवन नहीं है। ये काम तो जानवर भी कर लेते हैं। दुनिया में इंसान की औसत आयु साठवर्ष रह गई है। कुछ लोग अपवादवश ... सत्तर, अस्सी, नब्बे या सौ बरस भी जी लेते हैं लेकिन, जीवन की सार्थकता दीर्घ जीवन जीने में नहीं बल्कि उद्देश्यपूर्ण अल्प जीवन जीने में है। सिकंदर महान हो ... भगत सिंह हो या फिर स्वामी विवेकानंद। इन सबका जीवनकाल भले ही अल्प रहा हो, लेकिन इन्होने उद्देश्यपूर्ण जीवन जिया और इनकी ख्याति चिरस्थाई है। काल के कपाल पर इनका नाम दर्ज़ हो चुका है।"

"बंद करो अपना ये अखण्ड पाठ, औरों को भी बात करनी है।" बड़ी चाची ने अपने पतिदेव को दोनों हाथों से साष्टांग प्रणाम किया और फ़ोन छीन लिया। अगल-बगल खड़े सभी जन खिल-खिलाकर हंसने लगे। बड़ी चाची ने प्रवचन जारी रखा, "ज़रा बच्चों को पढ़ा दो। छुट्टी के दिन कुछ अपना भी जीना सार्थक कर लो हिटलर महाराज।"

"हिटलर कौन बोलता है मुझे।" बड़े चाचा जी बौखलाए और भड़कते हुए बोले।

"सभी बोलते हैं। जिन पर तुम उपदेश झाड़ा करते हो।" बड़ी चाची ने कहा।

"तुमसे बड़ा हिटलर कौन होगा? जो अपने पतिदेव का जीना दुश्वार किये हो!" बड़बड़ाते हुए बड़े चाचाजी अंदर चले गए।

"और सुना बेटी! तेरे चाचा ने ज़ियादा बोर तो नहीं किया।" चाची ने फ़ोन पर गंगा से पूछा।

"अरे चाची जी, चाचा तो परम ज्ञानी आदमी हैं। उनका इस तरह उपहास मत किया करो। उनकी बातें सुनने में अच्छी लगती हैं।" गंगा ने बड़ी आत्मियता से कहा।

"दूर के ढोल सुहावने लगते हैं बेटी।" चाची ने उसी अंदाज़ में कहा। फिर दोनों ने दस-पन्द्रह मिनट तक इधर-उधर की खूब बातें की। बड़ी चाची के उपरांत सारी चाचियों ने फ़ोन पर आधा घण्टा से ऊपर बातें की। तब कहीं राधा भाभी का नंबर आया।

"कैसी हो राधा भाभी?" गंगा ने पूछा।

"एक विधवा के लिए जीना क्या मरना क्या? बस वक्त कट रहा है।" राधा भाभी ने कहते हुए अपने मृत पति अशोक को याद किया। जो हमारे परिवार के सबसे बड़े भाई थे और ताऊजी के एकमात्र सुपुत्र। ताऊजी के हार्ट अटैक का कारण भी पुत्र की आकस्मिक दुर्घटना में मौत थी। गंगा भी उस दिन खूब रोई थी। पूरे परिवार में दो-तीन महीने तक मरघट का सा सन्नाटा छाया रहा था। ताऊ जी और ताई जी को तब पूरे परिवार ने एक पल भी अकेला न छोड़ा था। जिस कारण इकलौते पुत्र की मृत्यु के बाद भी ताऊजी और ताईजी सम्भल गए थे और उनमें जीने की चाह भी बनी रही। राधा भाभी की कोई औलाद नहीं है। वो हमारे बच्चों को ही अपने बच्चों की भांति स्नेह करती है। वैसे तो सभी भाभी को खुश रखने का प्रयास करते हैं, मगर कभी-कभी आज भी वो भाई को याद करके भावुक हो जाती है।

अंत में फ़ोन पुनः मेरे हाथों में आ गया।

"अरे गंगा बहन, ऐसे ही सबसे बातें करती रहोगी तो सुबह से शाम हो जाएगी! तुम्हारे फ़ोन का सारा बैलेन्स एक ही काल में ख़र्च हो जायेगा।" और बातचीत में ध्यान भटकने के कारण, ज़ल्दबाज़ी में जो ताश का पत्ता मेरे हाथ से नीचे गिरा तो मंझले चाचा ख़ुशी से चींखे, "भतीजे ये लगी तेरह की सींप!"

"भइया आप लोग नहीं समझोगे संयुक्त परिवार का महत्व क्योंकि आप लोग इकट्ठा रहते हैं। हर वक्त हँसते-गाते और खेलते रहते हैं, और एक मेरा ससुराल है—जहाँ सास-ससुर गाँव में खेती-बाड़ी देखते हैं। जेठ-जेठानी एक ही शहर में अलग रहते हैं। पिछले साल देवर-देवरानी भी लड़-झगड़ के अलग नगर जा बसे हैं! और तो और हमारी नन्दिया भी राखी बँधवाने तक नहीं आती हैं। हम तो रिश्तेदारों की सूरत देखने को तरस गए हैं।" कहते-कहते गंगा की रुलाई छूट पड़ी, "शहरों में अपने-अपने फ्लैटों में कैदियों का सा अभिशप्त-एकाकी जीवन जीने को बाध्य हैं हम लोग। चारों तरफ कंकरीट और सीमेंट के जंगल हैं। सड़कों पर दिन-रात भागता शहर। न जाने हम किस दिशा में जा रहे हैं। इंटरनेट पर हम दुनिया-जहान से जुड़ जाते हैं मगर अपने ही पड़ौस और क़रीबियों से दूरियाँ बनाये हुए हैं।" आगे के शब्द गंगा के मुख में ही रह गए थे। बस फ़ोन पर उसकी सिसकियाँ सुनाई दे रही थी।

"तेरे इन यक्ष प्रश्नों के उत्तर मेरे पास भी नहीं हैं गंगा बहन। तू मत रो! वरना अभी हम सारे के सारे जने तुम्हारे घर पहुँच जायेंगे। और तुम खाना पका-पका के थक जाओगी।" कहा तो मैंने गंगा को हसाने के उद्देश्य से था मगर बहन के अकेलेपन को महसूस करते हुए मेरी भी आँखों से आंसुओं की दो बूंदें तैर गई।

•••

कद्रदान

शाम पूरी तरह ढलने को थी ;क्योंकि सब जगह लाइटें जल उठीं थीं। हमेशा की तरह बाज़ार सजा हुआ था। तमाम कोठों भीतर का माहौल अमूमन वही था, जैसा विभाजन के दौर में लिखी गई सआदत हसन मंटो की अनेक कहानियों में दिखाई पड़ता है। वहां मौजूद लड़कियों के चेहरों से ही नहीं बल्कि समस्त वातावरण, दरो-दीवारों, छतों, से भी वासना टपक रही थी। ज़ीनों से चढ़ते उतरते शौक़ीन लोग। उन्हें तरह-तरह की अदाओं से लुभाती लड़कियाँ, साक्षात् काम को आमन्त्रण दे रहीं थी। बाजार की सड़कों में भी यत्र-तत्र से आती फूलों की महक राहगीरों को अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। कुल मिलाके कहना यह कि समस्त वातावरण रमणीय बना हुआ था। कोई दलाल लेन-देन को लेकर ग्राहक से बहस, लड़ाई-झगड़ा कर रहा था, तो कोई बड़े प्रेम से ग्राहक को फंसा रहा था। हलवाई की कढ़ाई में समोसे और गरमा-गरम जलेबियाँ तैयार की जा रही थी। जिन्हें करीने से थालियों में सजाया गया था। हर कोई अपनी धुन में मग्न था और अपने मनसूबों को अंजाम देने में व्यस्त था।

एक व्यक्ति जो अपने-आप में मसरूफ़ था। तभी संगीत की मधुर स्वर लहरी उसके कानों में पड़ी तो वह बेचैन हो गया। वह आवाज़ की दिशा में खिंचता चला गया। पता नहीं कौन-सी कशिश थी कि, चाहकर भी वह स्वयं को रोक न सका। गीत को गायिका ने बड़ी कुशलता के साथ गाया था। यकायक वह बड़बड़ाने लगा, "यही है! हाँ, हाँ .... यही है, वो गीत जो बरसों पहले सुना था।" गीत को सुनकर, वह पागलों की तरह बदहवास-सा हो गया था। चेहरे से वह लगभग 55-60 बरस

का जान पड़ता था। उसने लगभग पचास बरस पूर्व यह गीत ग्रामोफोन पर सुना था। इसके पश्चात उसने हर तरह का गीत-संगीत सुना — फ़िल्मी, ग़ैर-फ़िल्मी, सुगम संगीत से लेकर शास्त्रीय संगीत भी मगर वैसी तृप्ति न मिल सकी। जैसी इस गीत में थी। उस गीत की खातिर वह अनेक शहरों के कई संगीत विक्रय केंद्रों (म्यूजिक स्टोर्स) से लेकर बड़ी-बड़ी सभाओं और महफ़िलों में गया। मगर अफ़सोस वह गीत दुबारा कहीं सुनने को न मिल सका। यहाँ तक कि इंटरनेट पर, यू-टूब में भी उसने गीत के बोलों को तलाश किया। किंतु व्यर्थ वहां भी वह गीत उपलब्ध नहीं था। आज पचास वर्षों बाद उसकी यह उम्रभर की तलाश ख़त्म हुई थी। अतः उसका दीवाना होना लाज़मी था। वह निरन्तर आवाज़ की दिशा में बदहवास-सा बढ़ता रहा। आवाज़ कोठे के प्रथम तल से आ रही थी। एक पुराने से ग्रामोफोन पर उस गीत का रिकार्ड बज रहा था। वह हैरान था! कम्प्यूटर और मोबाइल के अत्याधुनिक दौर में कोई आज से पचास-साठ साल पुराने तरीके से पुराना गाना सुन रहा था। शायद कोई उससे भी बड़ा चाहने वाला यहाँ मौज़ूद था।

"आप बड़े शौक़ीन आदमी मालूम होते हैं, बाबू साहिब।" कोठे की मालकिन शबाना ने अपनी ज़ुल्फ़ों को झटका देते हुए कहा।

"शौक़ीन! ये गीत .... ओह मैं कहाँ हूँ?" वह व्यक्ति किसी नींद से जागा था।

"आप सही जगह आये हैं हुज़ूर। यहाँ हुस्न का बाज़ार सजा है।" शबाना ने ताली बजाई और लगभग दर्जनभर लड़कियां एक कतार से कक्ष में प्रवेश कर गई।

"माफ़ करना मैं रास्ते से गुज़र रहा था कि गीत के बोल मेरे कानों में पड़े– बांसुरी हूँ मैं तिहारी, मोहे होंठों से लगा ले साँवरे।" उसने उतावला होकर कहा।

"ये तो गुजरे ज़माने की मशहूर तवायफ़ रंजना बाई का गाया गीत है। जिसे गीत-संगीत के शौकीन नवाब साहब ने रिकार्ड करवाया था। इसकी बहुत कम प्रतियाँ ही बिक पाईं थी। फिर ये गीत हमेशा-हमेशा के लिए गुमनामी के अंधेरों में खो गया था। यूँ समझ लीजिए ये गीत तब का है जब पूरे हिंदुस्तान में के० एल० सहगल के गाये गीतों की धूम थी।" शबाना ने आगंतुक को गीत से जुड़ा लगभग पूरा इतिहास बता दिया।

"क्या मैं आपसे एक सवाल पूछ सकता हूँ?" शाबाना ने सिर हिलाकर अपनी स्वीकृति दी तो उसने अपना सवाल पूछा, "आप आज भी इसे ग्रामोफोन पर सुन रही हैं। वजह जान सकता हूँ क्यों?"

"रंजना बाई मेरी नानी थीं। मेरी माँ भी अक्सर उनका यह गीत इसी प्रकार ग्रामोफोन पर सुना करती थी। उन्होंने मुझे बताया था कि, यह ग्रामोफोन मेरी नानी ने उस ज़माने में ख़रीदा था। जब यह शहर के गिने-चुने रईसों के पास ही हुआ करता था।"

"ओह! आप तो उनकी मुझसे भी बड़ी प्रशंसक हैं। मेरे पास हज़ार रूपये हैं। तुम चाहों तो ये रखलो और मुझे यह रिकार्ड दे दो।" उस कद्रदान ने जेब से हज़ार का नोट निकलते हुए कहा।

"हज़ार रूपये में तो तुम पूरी रात ऐश कर सकते हो बाबूजी। इस बेकार से पड़े रिकार्ड पर क्यों एक हज़ार रूपये खर्च करते हो।" शबाना ने फिर से डोरे डालते हुए कहा।

"यह गीत मैंने आठ-दस बरस की उम्र में सुना था...." इसके पश्चात उसने इस गीत के पीछे अपनी दीवानगी की पूरी राम-कहानी शबाना को कह सुनाई। फिर अपनी दूसरी जेब से एक और नोट निकलते हुए कहा, "ये पांच सौ रूपये और रख लो, मगर अल्लाह के वास्ते मुझे यह रिकार्ड दे

दो। देखो इससे ज़ियादा पैसे इस वक्त मेरे पास नहीं हैं। ये गीत मेरी उम्रभर की तलाश है।" उसने अपनी सारी खाली जेबें शबाना को दिखाते हुए, यकीन दिलाने की चेष्टा की।

"बहुत खूब! कला के सच्चे कद्रदान हो! ले जाओ ये रिकार्ड और ग्रामोफोन भी।" शबाना ने पैसे लौटाते हुए कहा, "हमारी तरफ से ये सौगात तुम्हारी दीवानगी के नाम।"

"मगर ये पैसे क्यों लौटा रही हो?" वह व्यक्ति बोला।

"हम बाज़ारू औरतें ज़रूर हैं, मगर कला हमारी आत्मा में बसती है और हम कला का सौदा नहीं करती।" शबाना ने बड़े गर्व से कहा।

●●●

जीतनराम: एक दुःखद स्मृति

"पहचाना साहब!" सामान उठाते हुए नौजवान कुली ने कहा। वह अचानक सुबह की ताज़ी हवा के तेज झोंके की तरह सामने आ खड़ा हुआ था। लम्बी-घनी दाढ़ी-मूँछ और चेहरे को आधा छिपाते सिर के बिखरे लम्बे बाल, जो गालों तक को ढक रहे थे। उनके बीच में उसका चेहरा पहचाना मुश्किल ही नहीं, बिल्कुल नामुमकिन था। फिर भी मैंने अपने चेहरे पर चश्मे को ठीक से व्यवस्थित कर, उसके चेहरेनुमा शख़्स को याद करने की भरपूर कोशिश की मगर अपने इस प्रयास में असफल ही रहा।

"नहीं पहचान पाओगे साहब!" फिर खुद ही अपना परिचय देते हुए वह बोला, "रघुवर राम ... जीतन राम का बेटा।"

"अरे रघुवर तुम हो! तुम तो बिल्कुल भी नही पहचाने जा रहे भाई! ये क्या हुलिया बना रखा है? क्या साधु बनने का इरादा है?" मैंने उसके सर, दाढ़ी-मूछ के लम्बे बालों की तरफ इशारा करते हुए हैरानी से कहा, "और जीतन भाई कैसे हैं?"

"पापा को गुज़रे तो एक साल हो गया।" रघुवर ने एक झटके में कह दिया और सामान को कंधे और हाथों में व्यवस्थित करने लगा।

"ओह!" मैंने अफ़्सोस ज़ाहिर किया। एक बैग मैंने उठा लिया, "कोई बात नहीं, इसे मैं उठा लेता हूँ।"

"कोई नहीं मैं उठा लूंगा साहब! अब तो कुलीगिरी ही मेरा नसीब है।" रघुवर ने बड़ी ही संजीदगी से कहा। मैं हैरान था हमेशा मोबाइल पर वीडियो गेम खेलने वाला और अपनी छोटी बहन से लड़ने वाला रघुवर राम आज इतना बड़ा और परिपक्व हो गया है।

"अम्मा और तुम्हारी छोटी बहन कहाँ हैं?" मैंने चलते-चलते ही पूछा।

"अम्मा स्टेशन के बाहर ही भुट्टे बेच रही है।" गेट से निकलते हुए रघुवर राम बोला, "क्या करें साहब, एक काम से गुज़ारा नहीं होता? इसी साल के शुरू में बीना की शादी भी कर दी थी। सर पर काफी क़र्ज़ा हो रखा है। उसी को उतारने की कोशिश में दोनों माँ-बेटे दिन-रात मेहनत-मजदूरी कर रहे हैं। वो देखो ... वो रही अम्मा।" रिक्शा स्टैंड के पास सामान उतारने से पहले ही रघुवर राम बोला।

"नमस्ते!" मेरी तरफ देखकर जीतन की घरवाली माया ने दोनों हाथ जोड़े। वह काफी दुबली-पतली हो गई थी। सहासा! निराला की पंक्तियाँ मुझे याद आ गई—'पेट और पीठ मिलकर हुए हैं एक'। देखकर ही अंदाजा लग रहा था कि किन विषम आर्थिक परिस्थितियों में संघर्ष करने को मज़बूर हैं दोनों माँ-बेटे।

"नमस्ते!" प्रतिउत्तर में मैंने भी कहा ही था कि मेरे पीछे दो-तीन रिक्शेवाले आ खड़े हुए।

"कहाँ चलेंगे साहब?" लगभग सभी रिक्शेवालों के मुंह में एक ही संवाद था।

"नहीं, नहीं। आप लोग जाइये। हमारे मित्र अपनी गाड़ी लेकर आते ही होंगे।" मैंने रिक्शेवालों को टालते हुए कहा।

"तीन चाय देना।" बगल से गुज़रते हुए चाय वाले को देखकर रघुवर ने आवाज़ दी। चायवाले को कहने भर की देर थी कि उसने फ़ौरन प्लास्टिक के तीन कपों में चाय उडेलनी शुरू कर दी।

"इक्कीस रूपये। एक रूपये खुला देना साहब, सुबह-सुबह का वक्त है।" तीनों को चाय पकड़ने के उपरांत चायवाला बोला।

"अबे हम क्या भागे जा रहे है? ले लियो थोड़ी देर में।" रघुवरराम चाय वाले पर बरसते हुए बोला।

"कोई नहीं, मैं दे देता हूँ।" और पर्स में से 50 रूपये चायवाले को थमा दिए। साथ ही एक रुपया खुला भी दिया। उसने तीस रुपए लौटा दिये। चायवाला आवाज़ लगाते हुए आगे बढ़ गया, "चायवाला, चाय। कड़क-कड़क, इलायचीदार चाय।" हम चाय की चुस्कियां लेने लगे।

"बड़ा अफ़्सोस हुआ बहन जी, जीतन भाई के बारे में सुनके।" चाय की दो-तीन चुस्कियां लेने के उपरान्त मैंने कहा, "पर होनी को कौन टाल सकता है!"

"वो लक्ष्मी के सदमे से उभर नहीं पाये। उसी के ग़म में चल बसे।" लगभग रोते हुए जीतन की घरवाली बोली।

"लेकिन आप अचानक पटना में!" रघुवर ने गरम चाय को फूंकते हुए कहा।

"हाँ, यहाँ एक स्थानीय कवि सम्मलेन में हिस्सा लेने आया हूँ। तीन दिन का दौरा है। आने-जाने की व्यवस्था यहाँ के स्थानीय साहित्यकारों ने ही कर रखी है।" मैंने अपने आने का कारण स्पष्ट किया, "और अब प्रकाशक भी हो गया हूँ। ये जो सारा सामान देख रहे हो, इसमें किताबें ही भरी पड़ी हैं। मैंने स्टेशन पर उतरने से पहले ही, सतेन्द्र जी को अपने आने की सूचना दे दी है। वो अपनी गाड़ी लेकर आता ही होगा।" ज़रा दुबारा फ़ोन कर दूँ और कहकर मैंने मोबाइल से सतेन्द्र का नंबर पुनः डायल किया।

"कहाँ हो गुरुदेव, श्री-श्री एक हज़ार आठ वीरू भण्डारी जी?" सतेंद्र ने झट से फ़ोन उठा लिया और उल्टा मुझसे ही प्रश्न किया।

"अरे यहीं हूँ सतेंद्र भाई, स्टेशन के बाहर रिक्शा स्टैंड के पास।" मैंने मोबाइल पर अपने खड़े होने के स्थान की पुष्टि की। वह न जाने कबसे स्टेशन के भीतर मुसाफिरों की भीड़ में मुझे तलाश रहा था। मैंने मोबाइल जेब के सुपुर्द करते हुये कहा, "शैतान को फ़ोन किया और वो स्टेशन में ही घूम रहा है!"

सतेन्द्र सहित अन्य कवियों की सहयोग राशि से "पुस्तक प्रकाशन" हेतु राशि मुझे ऑनलाइन ही मोबाइल से प्राप्त हो गई थी। इसके अलावा दो कवियों से पाँच हज़ार रूपये बतौर एडवान्स, दिल्ली में ही मिले थे। वह मेरे कोट के भीतर की जेब में पैकेट के अंदर ज्यों-के-त्यों रखे थे। मैंने वो पैकेट माया के हाथ में रख दिया, ये कहकर, "ये मेरी तरफ से तुच्छ भेंट।" तब तक सतेंद्र भी मुझे ढूंढता हुआ आखिरकार मेरे पास पहुँच ही गया। रघुवर राम ने कार में मेरा सामान एडजेस्ट किया। सब बैगों में कुल जमा किताब की ग्याहरा सौ प्रतियां सजिल्द थी। जो बमुश्किल बैगों में समां पाई थी। चलते समय कविता के किताब की एक प्रति मैंने रघुवर राम को भी दे दी थी। अश्रुपूर्ण नेत्रों से माया और रघुवर हाथ जोड़े 'कृतार्थ' भाव से मुझे देख रहे थे। इस बीच सतेंद्र ने कार स्टार्ट कर दी। हाथ हिलाते हुए उन भावुकता के क्षणों में मैंने वहां से विदा ली।

सतेंद्र के यहाँ कार्यक्रम पहले से तय था। अतः रहने, खाने-पीने की उचित व्यवस्था और बिहार के स्थानीय कवियों के साथ जमके हंसी-ठठा हुआ। कवि सम्मलेन में भी खूब रस जमा। सुनने वालों ने अच्छी कविताओं का आनंद लिया। एक अच्छी बात यह रही कि जैसा कि मंचों पर अब यह कॉमन हो गया है—चुटकुलेबाज़ी और फ़ूहड़ हास्य-व्यंग। वह चीज़ यहाँ नदारद थी। इसी शर्त पर मैं आने को तैयार हुआ था कि सभी कवि अपना श्रेष्ठ काव्य प्रस्तुत करेंगे और आयोजक तथा संचालक सतेंद्र जी ने इसका ख्याल रखा था। मंच पर जब पुकारा गया अब महावीर उत्तरांचली जी अपना काव्यपाठ करेंगे तो मैंने गुनगुनाते हुए दोहों से आरम्भ किया:—

होंठों पर है रागनी, मन गाये मल्हार / बरसे यूँ बरसों बरस, मधुरिम मधुर फुहार // सबका खेवनहार है, एक वही मल्लाह / हिंदी में भगवान है, अरबी में अल्लाह // मिश्र-रोम तलक मिट गए, बाकी हिंदुस्तान / हिन्दू-मुस्लिम एकता, यही हिन्द की जान।

लगभग डेढ़-दो दर्ज़न दोहे सुनाने के बाद जब लोग मन्त्र-मुग्ध हो गए तो सतेंद्र जी ने ग़ज़लों की भी फरमाइश की और मैंने बड़ी तन्मयता से ग़ज़लें भी कहीं। ग़ज़ल सुनाने से पहले लोगों को बताया कि देशभर में सन 2011 में जो अन्ना हज़ारे आन्दोलन चला उस दौरान ये कुछ रचनाएँ कही थी: —"जो व्यवस्था भ्रष्ट हो, फ़ौरन बदलनी चाहिए / लोकशाही की नई सूरत निकलनी चाहिए / मुफलिसों के हाल पर आँसू बहाना व्यर्थ है; क्रोध की ज्वाला से अब सत्ता बदलनी चाहिए / इंकलाबी दौर को तेज़ाब दो जज़्बात का; आग यह बदलाव की हर वक्त जलनी चाहिए / रोटियां ईमान की खाएं सभी अब दोस्तों; दाल भ्रष्टाचार की हरगिज न गलनी चाहिए / अन्न है नारा हमारा लाल हैं हम विश्व के; बात यह हर शख्स के मुहं से निकलनी चाहिए।"

फिर दूसरी रचना पढ़ी:—"सीनाज़ोरी, रिश्वतखोरी, ये व्यवस्था कैसी है? होती है पग-पग पर चोरी, यह व्यवस्था कैसी है? सबकी ख़ातिर धान लगाए, खुद मगर न खा पाए; दाने को तरसे है होरी, ये

व्यवस्था कैसी है?" आदि-आदि एक के बाद एक ग़ज़ल लोग सुनते चले गए। मेरे बाद भी अनेक शायरों, कवियों ने भी पढ़ा। सुनने वालों ने सबको खूब सराहा। देर रात तक यह कार्यक्रम चला।

अगले दिन स्टेशन पर सतेंद्र मुझे फिर अपनी कार से वापसी की ट्रैन मैं बैठा गया। समय इतना कम था और भीड़ इतनी अधिक थी कि चाहकर भी रघुवर और उसकी माँ माया से भेट न हो सकी। खैर मैं ए.सी. कोच में बैठा था इसलिए ज़ियादा तकलीफ़ नहीं हुई। सामान कुछ था नहीं, लेकिन सतेंद्र ने चलते वक्त बिहार की कुछ खास चीज़ें मेरे बैग में रख दी थी। ये कहकर कि "यहाँ की मशहूर देहाती आयटमें हैं, रस्ते में खा लीजियेगा। कुछ बच्चो के लिए भी ले जाइयेगा।" बैग में जो चीज़ें मौजूद थीं, उनमे — सत्तू, चूड़ा, खजूर (आटा और चीनी मिश्रित मिष्ठान), चौरठ (चावल का मीठा लड्डू) थे। बाकी बैग फोल्ड करके उसी बैग में समा गए थे। अपनी सीट पर बैठा तो यकायक ही जीतन भाई का हँसता हुआ। मेहनतकस चेहरा याद आ गया। फिर तो पुरानी यादों की कड़ियाँ जुड़ती चली गईं और जीतनराम यादों की पृष्टभूमि पर सजीव हो उठा। मानों साल-दो साल पुरानी घटनाएँ न होकर ये सब, कल ही की बात हो।

०००

"प्रभु जी, तुम चन्दन हम पानी," अधेड़ उम्र जीतन राम रोज़ की तरह जूता-सी रहा था। यह भजन उसकी वाणी अमृत की तरह जब-तब, वक्त-बेवक्त लोग सुनते रहते और भाव-विभोर हो उठते।

"जीतन भाई लगता है यह भजन संत रैदास ने खास तुम्हारे लिए ही लिखा था।" मैंने लकड़ी के बैंच पर बैठे-बैठे बातचीत बढाने की गरज से कहा। प्रत्युत्तर में जीतन मुस्कुराभर दिया।

"कैसा भी मरा-गिरा, फटा-पुराना जूता हो जीतन भाई तुम्हारे हाथों का स्पर्श पाकर जी उठता है।" मैंने फिर से बातचीत का सूत्र जोड़ना चाहा।

"आप ठहरे लेखक आदमी ... शब्दों के जादूगर हैं। हमने पूरी ज़िंदगी चमड़े के कारोबार में गर्क की। इतना हुनर तो राम जी की कृपा से हमारे हाथों में आ ही गया है।" जीतन राम ने सुए से काट कर धागे को अलग किया और जूता मेरे पैरों के आगे कर दिया।

"कितना हुआ?" मैंने जूता पहनते हुए कहा।

"ग़रीब को जितना दे दो, कम है साहब।" जीतन ने दीन भाव प्रकट करते हुए कहा।

"भइया हमारा जूता देखकर भी आप इतना अन्दाज़ा नहीं लगा पाये कि हममें और तुममें कोई ज़्यादा फर्क नहीं है।" मैंने दस रुपये थमाते हुए कहा, "अच्छा आपको कैसे खबर हुई हुई कि हम लेखक हैं?" मैंने प्रश्न किया।

"अभी कुछ देर पहले ही आप मोबाइल पर किसी को बोल रहे थे कि आपकी कई रचनाएँ, कविता-कहानियाँ इंटरनेट पर उपलब्ध हैं।" जीतन ने स्पष्ट किया, "तब हमने सुन लिया था।"

"ओह! आपको तो जासूस होना चाहिए! अच्छा, अब मैं चलूँ। ड्यूटी को देर हो रही है" मैं तेज़ क़दमों से दुकान से बाहर निकल गया।

उत्तर प्रदेश के बॉर्डर में एक छोर दिल्ली से तो दूसरे छोर पर नोएडा से सटी अवैध रूप से विकसित खोड़ा कॉलोनी, सरकार की दृष्टि में दशकों से उपेक्षित रही है। इसका विकास तो एक

तरफ़ अभी ये भी नहीं पता, ये नोएडा का हिस्सा है या ग़ाज़ियाबाद ज़िल्ले का। ख़ैर इसी खोड़ा कॉलोनी में वीर बाज़ार के पास आठ बाई आठ (8 x 8) गज़ के कमरे में जीतन की मोची की एक छोटी सी दुकान थी। दीवार के तीन हिस्सों में उसके हाथ से बने जूते-चप्पल, सैण्डिल मरदाना और जनाना लकड़ी के फट्टों पर करीने से सजे थे। सुबह आठ बजे से रात दस बजे तक जीतन राम दुकान में बैठा चमड़े के बीच अपनी रोज़ी-रोटी तलाशता। मैं अक्सर दफ्तर आते-जाते उसी की दुकान के आगे से गुज़रता था। मेरी और उसकी निगाहें कई बार टकरातीं तो हाथ दुआ-सलाम और 'राम-राम' के अंदाज़ में उठ जाते। अतः इसी मित्रतावश कई बार जूता-चप्पल ठीक करवाते वक्त मैं उसकी दुकान पर बैठकर उससे बतियाता था। जीतन के घर के अन्य सदस्य भी अक्सर दुकान में दिखाई पड़ते थे। उसकी पत्नी माया कई बार काम में उसका हाथ बटाती थी। अतिरिक्त आमदनी हेतु आजकल वह दुकान के बाहर एक कोने पर भुट्टे बेच रही थी। जीतन के तीन बच्चे थे। बड़ी बेटी लक्ष्मी, उम्र 22 वर्ष, विवाह योग्य हो चुकी थी। जबकि उसका लड़का रघुवर राम, सत्रह वर्ष और छोटी बेटी बीना सोलह वर्ष की थी। अक्सर दोनों बच्चों को भी मैं दुकान पर देखता था। रघुवर या तो बीना को पीट रहा होता या फिर अपने मोबाइल फोन पर कोई खेल खेलता रहता।

"बाबूजी राम-राम। आज तो दफ्तर से जल्दी आ रहे हो।" जीतन ने हल्की मुस्कान चेहरे पर लाते हुए कहा।

"हाँ जीतन भाई, आज जल्दी छुट्टी ले ली।" मैंने कहा।

"कोई खास वजह!" जीतन ने पूछा।

"कल शाम की गाड़ी से बीस दिन के लिए गांव जा रहा हूँ। उत्तराखंड में दो-तीन शादियां हैं। इसलिए आज थोड़ी जल्दी छुट्टी ले ली।" मैंने जल्दी आने का कारण बताया, "ये सोचकर कि घर जल्दी जाकर क्या करूँगा? चलो कुछ वक्त तुम्हारी दुकान पर ही बिता लिया जाये।" मैंने दुकान के भीतर लकड़ी की बैंच पर बैठते हुए कहा।

"अच्छा ग़ाँव कहाँ हैं आपका?" जीतन ने प्रश्न किया और पोलिस करने से पहले हाथ में पकडे नए जूते के फीते खोलने लगा।

"नैनीडांडा, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड में एक छोटा-सा गांव है "मल्ली कांडी" हरे-भरे पहाड़ों को याद करते हुए मैंने कहा।

"अच्छा तो पहाड़ों में जा रहे हैं आप। वहाँ तो ताज़ी आबो-हवा और शुद्ध पानी मिलता है न बाबूजी।" जीतन का प्रश्न मुझे अच्छा लगा।

"लेकिन पेट को तो भोजन चाहिए न जीतन राम जी," मैंने कहा, "ताज़ी आबो-हवा, खाने और शुद्ध पानी पीने से क्या होता है जी।"

"सही कह रहे हैं बाबूजी, पेट की भूख के कारण ही हम भी पटना, बिहार को छोड़कर खोडा जैसी सड़ी सी जगह पर पड़े हैं।" कहकर जीतन राम ने जम्हाई ली।

"अगर रोज़गार की व्यवस्था हो जाये तो गढ़वाल में रहना स्वर्ग से कम नहीं जीतन भाई।" मैंने पहाड़ों की मधुर स्मृतियों को याद करते हुए कहा।

"तू मनेगी नहीं। सारी गेम ख़राब कर दी।" इसी बीच कहकर रघुवर ने अपनी छोटी बहन बीना के गाल पर एक थप्पड़ रसीद कर दिया। वह रोने लगी। एक कर्कश शोर-सा दुकान में भर गया।

"तू मर क्यों नहीं जाता रघुवर। सारा दिन या तो मोबाइल पर गेम खेलता रहेगा या फिर बीना को रुलाता रहेगा।" जीतन की घरवाली माया बोली। जो इस वक्त भी दुकान के दरवाज़े पर भुट्टे भून रही थी। भुनते भुट्टों की महक पूरी दुकान को महका रही थी। इस महक में चमड़े और पोलिस की गन्ध कुछ दब सी गई थी।

"बाबूजी मैं तो तंग आ गया हूँ इस लड़के से। जीतन राम नए जूते को लोहे के फार्मा पर रखकर दे दनादन कीलें ठोक रहा था।

"बच्चे तो लड़ते-झगड़ते रहते ही हैं।" मैंने मुस्कुराते हुए कहा।

"पढाई-लिखाई में ज़रा भी मन नहीं है। हर मोबाइल फ़ोन से चिपका रहता है। पता नहीं क्या करेगा बड़ा होकर।" जीतन राम लड़के भविष्य को लेकर चिंतित था।

"आपका तो ठीक है जीतन भाई। लड़का कुछ भी नहीं कर पाया तो जूते बनाने का पुश्तैनी काम कर लेगा। दिक्कत तो हमारे बच्चों को है। अगर सही नौकरी नहीं मिली तो कहीं फैक्टरी में बारह-चौदह घंटे काम करके पूरी ज़िंदगी खपा देगा।" मैंने अपना दृष्टिकोण रखा।

"यह तो आपने कुछ-कुछ सही बात कही है।" जीतन राम ने झिझकते हुए कहा।

"कुछ-कुछ क्या जीतन भाई, सौ फीसदी सही बात कही है।" मैंने अपने दृष्टिकोण को जायज़ ठहराते हुए कहा।

"आपसे मैं सहमत हूँ, लेकिन चमड़े के कारोबार में अब पहले जैसी बरकत नहीं रही। बस मोचीगिरी करके थोड़ा दाल-रोटी चल जाती है।" जीतन ने धन्धे की मौजूदा आर्थिक स्थिति बताई, "मेरी तो दोहरी आफ़त है। कारोबार में आर्थिक मन्दी की मार झेल रहा हूँ। जबकि इसी सर्दियों में बड़ी बेटी लक्ष्मी का ब्याह भी करना है। जो थोड़ा बहुत जमा पूंजी है, सब लगा देंगे शादी में।" अन्तिम शब्द बोलते समय जीतन के चेहरे पर भविष्य की चिंताएं स्पष्ट देखी जा सकती थी।

"बाज़ार सब जगह ही बैठा हुआ है। लोगों के उद्योग-धन्धे बंद हो रहे हैं। मज़दूर बेरोज़गार हो रहे हैं। इंसानों की जगह मशीनों ने ले ली है।" मैंने बाजार पर अपना नजरिया था, अनपढ़ जीतन राम के आगे रख दिया।

"सही कह रहे हो बाबूजी। आजकल लोग तीन-चार सौ में फैक्टरी, कम्पनी के बने जूते पहन रहे हैं। फटने पर लोग उन्हें फेंककर नए जूते खरीद लेते हैं।" जीतन ने अपनी दुखती रग कही।

"आपको पता है यूरोप-अमेरिका में अब मोची होते ही नहीं। लोग नए-नए डिज़ाइन के जूते खरीदते, पहनते और अच्छा-खासा इस्तेमाल के बाद उन्हें फैंक देते हैं। ये सोचकर की इन्हे बहुत पहन लिया। अब नए जूते पहने जाएँ। जूतों की कीमत भी इतनी कम है कि रिपयेर कराने की ज़रूरत नहीं पड़ती।" मैंने विदेश में हुई नयी प्रगति के बारे में जीतन राम को बताया, "और जानते हो दुनिया भारत को बहुत बड़े बाज़ार के रूप में देख रही है। बड़े-बड़े व्यापारी यहाँ अपनी दुकानें खोल रहे हैं। धीरे-धीरे यहाँ की परम्परागत दुकानें और हाथ के कारीगर ख़त्म होते चले जायेंगे।"

"बाबूजी फिर तो बहुत बुरा हो जायेगा। हमारा रघुवर क्या करेगा?" जीतन ने अपनी आशंका प्रकट की तो उसके बाल-बच्चों को ध्यान भी हमारी बातचीत पर केंद्रित हो गया। रघुवर ने मोबाइल के गेम पर अपनी उंगलियाँ चलनी बंद कर दीं, तो बीना भी अपना रोना भूलकर मुझे देखने लगी। भुट्टे भूनती माया का भी कमोवेश यही हाल था।

"घबराने की ज़रूरत नहीं। ये परिवर्तन कोई एक दिन में या एक झटके में होने वाले नहीं। ये परिवर्तन इतने महीन और धीरे-धीरे होंगे कि हमें खुद इन्हें स्वीकार करने में कोई दिक्कत नहीं होगी।" मैंने हँसते हुए कहा ताकि जीतन और उसके परिवार वाले अपने मन में कोई गलत धारणा न बना लें।

"मैं कुछ समझा नहीं, धीरे-धीरे परिवर्तन कैसे होंगे?" जीतन ने असमंजस की स्थिति में खुद को पाया।

"आप देखो, जब तक अंग्रेज़ हमारे ऊपर हुकूमत कर रहे थे। हम भारतीय परिधान कुर्ता पायजामा पहनते थे। उनके जाने के बाद अब बड़ी शान से पैन्ट, कमीज, कोट, टाई पहनते हैं। लड़कियों ने तो टी-शर्ट, जींस, टॉप-स्कर्ट आदि पहनने में अंग्रेज़नों तक को पीछे छोड़ दिया है।" मैंने उस महीन और धीरे-धीरे होने वाले परिवर्तन का अहसास दिलाते हुए कहा, "पहले हम भारतीय क्या खाते थे? रोटी-सब्जी, दाल-चावल, हलवा-पूरी-खीर आदि भारतीय व्यंजन।" मैंने भवें बड़ी करते हुए जीतन से पूछा, "और बताओ अब हम क्या-क्या नहीं खाते हैं? पिज्जा, बर्गर, ब्रैड, ममोज, चाऊमीन, इटैलियन, ब्रितानी, चीनी, जापानी आदि दुनिया-जहान के व्यंजन। कई बार तो हमें पता भी नहीं होता कि हमने जो खाया, वह किस देश का व्यंजन है। यह सब समय के साथ-साथ हुए महीन परिवर्तन ही तो हैं।" सब मेरी बातों को ऐसे सुन रहे थे। जैसे मैं कोई बहुत बड़ा जादूगर हूँ और उन सबको कोई जादू करके दिखा रहा हूँ। फिर अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए मैंने जीतन की तरफ प्रश्न उछाला, "अच्छा जीतन अगर हम अपने दादा-परदादा को टाई पहनने को या पिज्जा-बर्गर खाने को कहते तो क्या वो लोग ऐसा करते?" मैंने जीतन से कहा।

"नहीं।" जीतन ने 'ना' में सिर हिलाया।

"उलटे वो लोग हमें भारतीयता के उपदेश देने लगते! जबकि ये चीज़ें, आज हमारे जीवन का अहम हिस्सा हैं!" मैंने वर्तमान समय में हुए बदलाव की तरफ़ जीतन के दिमाग़ का रुख़ किया, "क्या मोबाइल के दौर में हम लैंड लाइन का इस्तेमाल करेंगे? नहीं न।" और जीतन ने सहमति में सिर हिलाया। मैंने अपनी बात के समर्थन में लगभग जीतन राम का ब्रैनवास करते हुए कहना ज़ारी रखा, "ये तो वो बात हो जाएगी, कम्प्यूटर के दौर में हम टाइपराइटर पर टाइपिंग करके अपनी उंगलियाँ तोड़ रहे हैं! या फिर बहुत से रोचक चैनलों, मसलन 'स्टार' और 'जी' नेटवर्क के रोचक प्रोग्राम को छोड़कर, दूरदर्शन पर घिसे-पिटे प्रोग्राम देखकर टाइम पास कर रहे हैं!"

"हाँ, बाबूजी आप सही कह रहे हैं। लेखक जो ठहरे।" जीतन राम हैरानी से बोले।

"ये भुट्टे कैसे दिए?" मैंने जीतन की घरवाली माया से कहा।

"पाँच रुपये का एक है।" माया जैसे यकायक किसी नींद से जागी। लगभग यही हाल रघुवर और बीना का भी था। रघुवर पुनः मोबाइल की नई गेम में व्यस्त हो गया। बीना उसे खेलते हुए देखने लगी।

"देख लो बाबूजी मन्दी की मार। मोची की घरवाली को घर चलाने के लिए भुट्टे बेचने पड़ रहे हैं।" जीतन राम ने हँसते हुए कहा और फरमे पर नया जूता चढ़ा लिया तथा उस पर कील ठोकने लगा।

"ठीक तो है जीतन भाई। अतिरिक्त आमदनी किसे बुरी लगती है?" मैंने कहा, "चार भुट्टे बांध देना बहन जी, खूब नमक-नीम्बू लगाके। मेरी घरवाली को बहुत पसंद है।"

"जी भाई साहब!" और ख़ुशी-ख़ुशी माया ने ताज़ा भुने हुए चार भुट्टों पर अच्छे से नींबू-नमक लगाकर उन्हें पन्नी में डाल दिया।

"अच्छा जीतन भाई, अब मैं चलूँ।" माया को २० रुपये पकड़ाते हुए, भुट्टे अपने हाथ में लेते समय मैंने कहा, "कल की यात्रा के लिए कुछ तैयारी भी करूँगा। घर जाकर सामान-वामान पैक करना है।"

"लेखक साहब ज़रा रुकिए।" जीतन ने अपने थैले में से कुछ निकला। यह ज्वैलरी बॉक्स था।

"ये क्या है?" मैंने पुनः बैठते हुए कहा।

"ये सोने के कुछ जेवर हैं। जो लक्ष्मी बिटिया की शादी के लिए बनाये हैं। कान की बालियां। नाक की नथनी। मांग टीका और सोने के कंगन।" जीतन राम ने मुझे अपना समझके सारे जेवर दिखाए और मेरी राय जाननी चाही।

"पूरे तीन लाख से ऊपर रूपये लग गए बाबूजी," पीछे से माया भुट्टे भूनते हुए बोली।

"बहुत बढ़िया। अति उत्तम। खूबसूरत गहने बने हैं। दाम भी ठीक हैं।" मैंने गहने देखे तो तारीफ़ किये बिना न रह सका।

"अब तो पीतल भी सोने के भाव हो रहा है बाबूजी।" जीतन ने कानों की बालियाँ मेरी और बढ़ाते हुए कहा।

"बिल्कुल आप सही कह रहे हैं जीतन भाई।" मैंने बालियों के वज़न को हाथों में लेकर तौला और बालियाँ जीतन को वापिस थमा दीं।

"गले का हार लड़के वाले खुद बनाएंगे, इसलिए हमने नहीं बनाया।" जीतन ने बालियों को करीने से बॉक्स में वापिस रखते हुए कहा। फिर अन्य जेवरों को भी उसी प्रकार बड़ी एहतियात बरतते हुए जीतन राम अन्य बॉक्सों में रखने लगा।

"बाबा चाय।" तभी सामने से चाय का थर्मस लिए एक युवती ने प्रवेश करते हुए जीतनराम के आगे थर्मस रखते हुए कहा।

"लो लक्ष्मी बिटिया भी आ गई शाम की चाय लेकर। बड़ी लम्बी उम्र है इसकी।" जीतन ने मुस्कुराते हुए कहा, "अभी बाबूजी को, हम तुम्हारी शादी के जेवर ही दिखा रहे थे।" शादी का नाम सुनते ही लक्ष्मी लज्जा गई। वह सामने लकड़ी के सेल्फ़ में रखे गिलासों को निकलने लगी।

"एक गिलास और निकाल दे। बाबूजी भी चाय पियेंगे।" जीतन ने मेरी ओर देखकर थोड़ा झिझकते हुए कहा, "बाबूजी आप हमारे हाथ की चाय पी सकेंगे!"

"अरे आज के आधुनिक युग में कौन से पुराने ज़माने की बात करते हो जीतन भाई!" मैंने थोड़ा हँसते हुए जीतन भाई की झिझक दूर करते हुए कहा, "फिर तुलसी बाबा कह गए हैं — जाति-पाती पूछे न कोई। हरि को भजे सो, हरि का होई।" गिलासों में चाय रखने के बाद लक्ष्मी सभी को चाय के गिलास देने लगी। मेहमान के तौर पर पहले मुझे चाय दी गई। "शुक्रिया," कहकर मैं चाय पीने लगा। इसी बीच लक्ष्मी का मोबाइल रिंग टोन बजाने लगा। लक्ष्मी ने नंबर देखा तो शरमा गई।

"लगता है, जवाई जी का फ़ोन है।" जीतन राम चाय की चुस्कियां लेते-लेते हँसते हुए बोले।

"जी बाबा।" कहकर लक्ष्मी दुकान से बाहर चली गई। कोई दस हाथ दूर सामने खाली पड़े प्लाट की ओर।

"हैलो जी, कैसे हो आप?" फ़ोन रिसीव करते ही लक्ष्मी के कानों में उनकी आवाज़ पड़ी।

"आप भी न, मौक़ा मिलता नहीं और फ़ोन कर देते हो।" लक्ष्मी ने नाराज़गी ज़ाहिर की, "आपको पता है न इस वक्त हम दुकान में बाबा को शाम की चाय देने जाते हैं।"

"ओह सॉरी डार्लिंग, क्या करूँ मन है कि मानता नहीं!"

"क्यों क्या हुआ मन को?"

"खुद ही चुराकर हमसे पूछ रही हो।"

"फालतू बातों का टाइम नहीं है हमारे पास। कुछ काम की बात है तो जल्दी कहो।"

"अच्छा, कल मॉल चलेंगे। आपके लिए कुछ शॉपिंग-वापिंग करेंगे। रेस्तराँ में खाना-पीना करेंगे। नई फिल्म देखेंगे, और क्या?"

"अच्छा जी, शादी से पहले इतनी फ़िज़ूलख़र्ची!"

"यही तो वक़्त है मैडम, घूमने-फिरने का। फिर तो बाद में सारी ज़िंदगी ज़िम्मेदारियाँ ही उठानी हैं।"

"काफ़ी बातें हो गईं। चलो फ़ोन रखती हूँ। वहाँ अंदर दुकान में सब न जाने क्या-क्या सोच रहे होंगे?" फ़ोन काटकर तेज़ क़दमों से लक्ष्मी दुबारा दुकान के भीतर चली आई।

"बहुत अच्छी और कड़कदार चाय बनाई है लक्ष्मी बिटिया तुमने।" मैंने ख़ाली गिलास नीचे फ़र्श पर रखते हुए कहा, "अच्छा जीतन भाई अब मैं चलता हूँ। काफ़ी देर हो गई है। फिर उत्तराखण्ड के सफ़र की तैयारी भी करनी है। सामान-वामान पैक करना है।"

बीस दिनों के बाद जब मैं गाँव से लौटा। देखकर हैरान रह गया कि जीतन राम की दुकान वहाँ नहीं थी। अब वहाँ कोई नया व्यक्ति खाने-पीने की चीज़ों की दुकान सजाये बैठा था। मसलन, ममोज़, चाऊमीन, बर्गर, पिज़्ज़ा, समोसा, ब्रेडपकोड़ा, कोल्ड ड्रिंक्स, और चाय इत्यादि। लोग-बाग आ-जा रहे थे। कोई खाने-पीने चीज़ें पैक करवा रहा था। कोई दुकान पर ही खा-पी रहा था। कुल-मिलकर कहना यह की रोज़गार गरम था। मैंने समोसा और चाय ऑर्डर की।

"साहब आपका ऑर्डर।" कहने की देर थी। पहले से ही तैयार चाय-समोसा मेरे मेज़ पर रखते हुए लड़का बोला।

" सुनो, भाई यहाँ जो मोची बैठता था। उसका क्या हुआ? वह कहाँ है?" मैंने प्रश्न किये।

"साहब बहुत बुरा हुआ बेचारे के साथ। हफ्तेभर उसकी बेटी प्राइवेट हॉस्पिटल में भर्ती रही। फिर मर गयी। मोची पर 12–14 लाख रूपये क़र्ज़ हो गया था। आनन-फानन में उसने अपनी दुकान हमारे मालिक को बेच दी।" लड़के ने संक्षेप में बताया।

"कौन लड़की बड़ी या छोटी वाली?" मैंने समोसा तोड़कर चटनी में डूबते हुए कहा।

"साहब उसकी बड़ी लड़की।" लड़के ने बताया, "जिसका ब्याह होने वाला था।"

"लेकिन लक्ष्मी तो ठीकठाक थी।" मैंने आश्चर्य व्यक्त किया।

"साहब लक्ष्मी का एक्सीडेंट हो गया था।" लड़के ने बताया, "वो अपने मंगेतर के साथ शिप्रा मॉल से शॉपिंग करके वापिस लौट रही थी कि नोएडा सेक्टर बासठ के चौराहे पर ट्रक वाले ने उनकी बाइक को ज़ोरदार टक्कर मारी। लड़का तो मौके पर ही मर गया लेकिन लड़की कोमा में चली गयी।"

"छोटू वहाँ क्या गपशप कर रहा है। यहाँ दूसरे ग्राहक के लिए ममोज पैक कर!" इससे पहले की लड़का कुछ और कहता, मालिक दुकान उस पर बुरी तरह चिल्लाया। मैंने समोसा मुँह की तरफ बढ़ाया ही था कि लक्ष्मी का चेहरा आँखों के सामने घूम गया। आँखें नम हो गयी और हृदय भारी हो गया। मन भर गया। समोसा पलेट में वापिस रखते हुए मैं वहां से उठ गया। बिना कुछ खाए-पिये मालिक दुकान को पैसे देकर मैं वहाँ से लौट आया। क़दम उठाये नहीं उठ रहे थे। हृदय जीतन से जुड़ी यादों से ग़मगीन हो गया। हे भगवान, कितने प्यार से जीतन ने लक्ष्मी के शादी के जेवर बनाये थे! और बड़ी आत्मीयता के साथ मुझे दिखाए थे! हे प्रभु, ये क्या कर डाला? क्यों अपने बगीचे से तूने हरी-भरी डाल को तोड़ डाला? उस रात काफ़ी देर तक जीतन की दुकान से जुडी यादें मुझे विचलित किये रही। मेरी पत्नी के लाख कहने के बावज़ूद भी मैं रात्रि का भोजन नहीं कर सका। अपनी पत्नी को जब मैंने उस हादसे के बारे में बताया तो वह भी रो पड़ी। हालाँकि उसने कभी लक्ष्मी का चेहरा नहीं देखा था और न वह जीतन के परिवार से कभी मिली थी। लेकिन मैं अपनी घरवाली को जीतन और उसके परिवार के बारे में इतने विस्तार से बताता रहा था कि उसकी निगाहों में जीतन के परिवार का चित्र बनने लगता था। उसे मैंने बताया था, लक्ष्मी बिलकुल हमारी बिटिया मोनाली की तरह ही दिखाई देती है। इस तरह लक्ष्मी की मौत की खबर से मेरी पत्नी भी विचलित हो गई थी। रह-रहकर लक्ष्मी का मासूम-अबोध चेहरा मेरी आँखों के सामने घूमता रहा। मैं मन में दुर्घटना की कल्पनायें कर-कर के अन्दर ही अन्दर रो रहा था। अपने सोते हुए बच्चों की तरफ देखकर दुआ कर रहा था। परमात्मा इन्हे कोई दुःख-तकलीफ़ या दर्द मत देना। कोई अनहोनी हो जाए तो पहले मुझे उठा लेना। उस रात अपनी बेटी के सिर पर सनेह से हाथ फेरते हुए और उसे सैकड़ों दुआएं देते हुए, न जाने कब मुझे नींद आ गयी।

"साहब दिल्ली स्टेशन आ गया है। आप किन विचारों में खोये हैं।" सहयात्री ने मुझे झकझोरते हुए जैसे नींद से जगाया। लोग अपने सामान के साथ ट्रेन से नीचे उतर रहे थे। तभी कोई शख़्स मेरे करीब से कुछ गाते हुए गुज़रा, "आदमी मुसाफिर है। आता है। जाता है। आते-जाते रस्ते में यादें छोड़ जाता है।" और मैं जीतन की यादों को हृदय में समेटते हुए। अपना बैग कंधे पर टांगे हुए ट्रैन से नीचे उतर गया।

•••

मुलाक़ात

याद रख सिकंदर के, हौसले तो आली थे,
जब गया वो दुनिया से, दोनों हाथ ख़ाली थे।

शमशान के द्वार पर एक पागल फ़क़ीर ऊँचे सुर में चिल्ला रहा था। शव के साथ आये लोगों ने उस पागल की बात पर कोई विशेष ध्यान न दिया; क्योंकि शमशान में यह आम बात थी। अभी-अभी जिसका शव शमशान में लाया गया था, वह शहर के सबसे बड़े अमीर व्यक्ति सेठ द्वारकानाथ थे। पृष्ठभूमि पर नाते-रिश्तेदारों का हल्का-हल्का विलाप ज़ारी था, लेकिन उनमे अधिकांश ऐसे थे, जो सोच रहे थे—द्वारकानाथ की मृत्यु के बाद अब उनकी कम्पनियों का क्या होगा? बँटवारे के बाद उन सबके हिस्से में कितना-कितना, क्या-क्या आएगा? शहर के अनेकों व्यवसायी महंगे परिधानों में वहाँ जमा थे। उन्हें समझ नहीं आ रहा था—क्या करें? क्या कहें? वह सिर्फ़ द्वारकानाथ से जुड़े नफ़े-नुक़सान की बदौलत वहाँ खड़े थे। शमशान में भी उन्हें शोक करने से ज़ियादा आनंद अपने बिजनेस की बातों में आ रहा था।

"और मेहरा साहब क्या हाल हैं? आपका बिजनेस कैसा चल रहा है।" सूट-बूट और टाई पहने व्यक्ति ने अपने परिचित को देखते हुए कहा।

"अरे यार वर्मा क्या बताऊँ?" मेहरा साहब धीरे से बोले ताकि अन्य लोग न सुन लें, "द्वारकानाथ दो घण्टे और ज़िंदा रह जाते तो स्टील का टेण्डर हमारी कम्पनी को ही मिलता, उनके आकस्मिक निधन से करोड़ों का नुक्सान हो गया!"

"कब तक चलेगा द्वारकानाथ जी के अंतिम संस्कार का कार्यक्रम?" मेहरा से थोड़ी दूरी पर खड़े दो अन्य व्यक्तियों में से एक ने ज़ुबान खोली, "मेरी फ्लाइट का वक़्त हो रहा है।"

"यह तो आज पूरा दिन चलेगा। शहर के अभी कई अन्य गणमान्य व्यक्ति, राजनेता भी आने बाक़ी हैं। सेठ द्वारकानाथ कोई छोटी-मोटी हस्ती थोड़े थे। उनका कारोबार देश-विदेश में काफ़ी

बड़े दायरे में फैला हुआ है। जैसे अंग्रेज़ों के लिए कहा जाता था कि उनका सूरज कभी डूबता ही नहीं था। ठीक द्वारकानाथ जी भी ऐसे ही थे।" दूसरे व्यक्ति ने विस्तार से अपना पक्ष रखा।

"बंद करो यार ये द्वारकानाथ पुराण।" तीसरे व्यक्ति ने बीच में प्रवेश करते हुए कहा, "सबको पता है द्वारकानाथ, बिजनेस का पर्यायवाची थे। खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते, नहाते-धोते हर वक़्त बिजनेस का प्रचार-प्रसार, नफ़ा-नुक़सान ही उनकी ज़िन्दगी थी। शेयर बाज़ार की गिरती-बढ़ती हर हलचल उनके मोबाइल से लेकर लेपटॉप तक में दर्ज़ होती थी।"

"यार मुझे तो फ्लाइट पकड़नी है, और यात्रा के लिए सामान भी पैक करना है।" पहला व्यक्ति बड़ा बेक़रार था।

"अरे यार चुपके से निकल जाओ। तुमने हाज़री तो लगवा ही दी है। अब यहाँ खड़े-खड़े मुखाग्नि थोड़े दोगे। फिर द्वारकानाथ कौन-सा किसी के सुख-दुःख में शामिल होता था। शायद ही पिछले तीन दशकों में कोई लम्हा बीता होगा। जब द्वारकानाथ जी ने अपने लिए जिया हो।" तीसरे व्यक्ति ने कहा।

"बंद करो ये बकवास। तुम यहाँ मातम मनाने आये हो या गपशप करने। शर्मा जी, हमको और आपको भी जाना है, एक दिन वहाँ।" चौथे व्यक्ति ने तीसरे व्यक्ति से कहा। और बातचीत में मौजूद तीनों व्यक्ति शर्मिंदा होकर चुपचाप खड़े हो गए।

शमशान में इस वक़्त लगभग दर्जन भर चिताएँ जल रही थी। चाण्डालों को मुर्दे फूँकने से फुरसत नहीं थी। जिनके मुर्दे जल चुके थे, वो लोग वापिस जा रहे थे, तो कुछ लाशें जलने के लिए तैयार की जा रही थीं। श्मशान में मौजूद पण्डित अन्तिम क्रिया-कलापों को करवाने में सहयोग कर रहे थे। द्वारकानाथ जी की चिता जहाँ तैयार की जा रही थी, उनसे कुछ दूरी पर ही किसी अन्य वी.आई.पी. की चिता भी जल रही थी! उस चिता के साथ आये कुछ लोग भी बातों में व्यस्त थे। उनमें से ही दो लोग बातें कर रहे थे।

"जानते हो राधेश्याम, मृतक गुप्ता जी बड़े बदनसीब आदमी निकले!"

"कैसे माधव भइया?" राधेश्याम बोला।

"गुप्ता जी के लड़के जीवित हैं, मगर अमेरिका रहते हैं।" माधव ने निराशा भाव से कहा।

"ओह! इसलिए नहीं आ पाए, पिता जी की अंत्येष्टि करने।" राधेश्याम ने अफ़्सोस जाहिर किया।

"नहीं ऐसी बात नहीं है! उनके लड़कों को एक हफ़्ते पहले बता दिया गया था कि आ जाओ गुप्ता जी कोमा में हैं कभी भी दम तोड़ सकते हैं!" माधव के स्वर में वही निराशा भाव व्याप्त था।

"अच्छा तो फिर!"

"वो नहीं आये! पड़ोस के लोगों को कह दिया कि आप लोग ही मिलकर उनके पिताजी का अन्तिम संस्कार कर दें, जो भी खर्चा होगा आनलाइन दे देंगे! उनका प्रमोशन पीरियड चल रहा है।"

"ओह, तो इस तरह चन्दे के पैसे से मुर्दा जल रहा है!"

"लानत है ऐसी औलाद पर! जिस बाप ने कष्ट सहके अपनी औलाद को इस क़ाबिल बनाया कि वो विदेशों में जाकर कमाई कर सके! उसकी मौत पर भी वो छुट्टी लेकर न आ सके!" माधव के भीतर की निराशा आक्रोश में बदल गई।

"छोड़ो न माधव भाई! शायद गुप्ता जी के लड़कों ने ठीक किया, अगर अमेरिका में बैठकर वो ये सब सोचेंगे तो जीवन की दौड़ में पीछे रह जायेंगे। क्या ज़रूरी है अंत्येष्टि पुत्र के हाथों ही हो? बी प्रेक्टिकल! टेक इट इज़ी!" राधेश्याम ने सान्त्वना देते हुए अपना दृष्टिकोण रखा, "जब परिवार टूट रहे हैं! रिश्ते टूट रहे हैं! तो ये सब परम्पराएँ ढोने और निभाने का कोई औचित्य नहीं रहा जाता, मरने वाला मर गया। उसे जलाओ, मत जलाओ। उसे सड़ने के लिए छोड़ दो। कहीं गड्ढे-नाले में फेंक दो। जानवरों को देखा है, मरने के बाद उनकी अंत्येष्टि कौन करता है?" राधेश्याम ने माधव से प्रश्न किया।

"तो क्या हम सब जानवर होते जा रहे हैं?" माधव ने राधे की और देखते हुए कहा।

अभी राधे माधव से कुछ कहता कि ऊँचे रोने के स्वर को सुनकर वह रुक गया।

"हाय! हाय! हम अनाथ हो गए।" द्वारकानाथ का एक नौकर पंचम सुर में दहाड़ें मारकर बोला। बाक़ी घर के चार-छह अन्य नौकर भी ऊँचे सुर में अपनी छाती पीटते हुए रोते हुए उससे सहमति दर्शाने लगे।

"हमें कौन देखेगा? सेठजी हमारे पिता की तरह थे।" उस नौकर का बिलाप ज़ारी था।

"हाय! हाय! सेठ जी! हाय! हाय! क्यों चले गए आप? काश, आपकी जगह हमें मौत आ जाती।" दूसरे नौकर ने कहा।

"सेठ द्वारकानाथ जी, उठिए न। आज तो आपको और भी कई महत्वपूर्ण डील फ़ाइनल करनी हैं। हमारी कम्पनियों को आज और भी करोड़ों रुपयों का मुनाफ़ा होना है।" सूट-बूट में खड़े व्यक्ति ने द्वारकानाथ के शव से कफ़न हटाते हुए कहा। शायद वह उनका निजी सचिव या कोई मैनेजर था। उनका चिर-निद्रा में सोया हुआ चेहरा, ऐसा जान पड़ रहा था जैसे, अभी उठ खड़े होंगे।

"आख़िर मिल ही गया मुलाक़ात का वक़्त तुम्हे, मेरे अज़ीज़ दोस्त! " एक व्यक्ति जो द्वारकानाथ के शव के सबसे निकट खड़ा था। यकायक बोला।

"आप कौन हैं?" मैनेजर ने उस अनजान व्यक्ति से पूछा।

"आप मुझे नहीं जानते, लेकिन द्वारकानाथ मुझे तब से जानता था, जब वह पांचवी क्लास में मेरे साथ पढता था।" उस व्यक्ति ने बड़े धैर्य से कहा।

"लेकिन आपको तो कभी मैंने देखा नहीं! न ही सेठजी ने कभी आपका ज़िक्र किया!" मैनेजर ने कहा।

"वक़्त ही कहाँ था, द्वारकानाथ के पास? मैंने जब भी उससे मुलाक़ात के लिए वक़्त माँगा। वह कभी फ़्लाइट पकड़ रहा होता था। या किसी मीटिंग में व्यस्त होता था। मैं उसे पिछले तीस बरसों से मिलना चाहता था!" उस व्यक्ति ने कहा, "और विडंबना देखिये आज मुलाक़ात हुई भी तो किस हाल में! जब न तो द्वारकानाथ ही मुझसे कुछ कह सकता है! और न ही मैं द्वारकानाथ को कुछ सुना सकता हूँ।"

इस बीच न जाने कहाँ से पागल फ़क़ीर भी द्वारकानाथ के शव के पास ही पहुँच गया था। वह कफ़न को टटोलने लगा और शव को हिलाने-डुलाने लगा।

"ऐ क्या करते हो?" द्वारकानाथ के नौकरों ने पागल फ़क़ीर को पकड़ते हुए कहा।

"सुना है यह सेठ बहुत अमीर आदमी था।" पागल फ़क़ीर ने कहा।

"था तो तेरे बाप का क्या?" मैनेजर ने कड़क कर कहा।

"मैं देखना चाहता हूँ। जिस दौलत के पीछे यह ज़िंदगी भर भागता रहा। अंत समय में आज यह कफ़न में लपेटकर क्या ले जा रहा है? हा हा हा ..." पागल फ़क़ीर तेज़ी से हंसने लगा।

"अरे कोई इस पागल को ले जाओ।" मैनेजर चिल्लाया।

नौकर-चाकर छोड़ के, चले द्वारकानाथ
दाता के दरबार में, पहुँचे ख़ाली हाथ

पागल फ़क़ीर ने ऊँचे सुर में दोहा पढ़ा। भूतकाल में शायद वह कोई कवि था क्योंकि दोहे के चारों चरणों की मात्राएँ पूर्ण थीं। नौकरों ने अपने हाथों की पकड़ को ढीला किया और फ़क़ीर को छोड़ दिया। साथ ही सब पीछे को हट गए। वह कविनुमा पागल फ़क़ीर अपनी धुन में अपनी राह हो लिया।

●●●

घरखर्च

"आज पिताश्री फ़ोन पर पैसों की माँग कर रहे थे।" बैग मेज़ के ऊपर रखते हुए मैंने बड़े ही भारी स्वर में कहा और कुर्सी पर पसर गया। फिर अपनी घरवाली सावित्री से इशारे में पानी पिलाने को कहा।

"यहाँ तो जैसे पैसों का झाड़ लगा है।" सावित्री ने पानी का भरा गिलास थमाते हुए कहा। इसके पश्चात वह बोली, "आप हाथ-मुँह धो लीजिये। चाय भी तैयार है।"

हाथ-मुँह धोने के उपरांत मैं तौलिये से मुँह पोछता हुआ कक्ष में पहुँचा तो मेज़ पर प्याले में चाय प्रस्तुत थी। मैं चुपचाप चाय पीने लगा। चाय के अमृतनुमा घूंटों ने दफ़्तर की थकान को मिटाने में काफ़ी सहायता की। तत्पश्चात मैंने सोचना आरम्भ किया। फ़ोन पर पिताजी ने हालचाल पूछने की औपचारिकता के बाद पारिवारिक मज़बूरियों का उल्लेख करते हुए कई बातें कहीं। जैसे छोटे भाई की कॉलेज फ़ीस। बहन के विवाह की चिन्ता के अलावा मुख्यरूप से खेती-बाड़ी में इस बार कुछ ख़ास फ़सल का न होना। लगभग पाँच-दस हज़ार रूपये की माँग। सोचते-सोचते दुबारा थकावट-सी होने लगी अपने भीतर कहीं। चाय के ख़ाली कप को मैंने मेज़ पर रख दिया।

शहरी ज़िन्दगी कुछ-कुछ ऐसी ही है जैसे मेज़ पर पड़ा ख़ाली कप। जो बाहर से दिखने में सुन्दर और बेशक़ीमती है, मगर अंदर से एकदम खोखला। मन में कुछ ऐसे विचार स्वतः ही तैरने लगे। जब तक प्याला भरा है। हर जगह पूछ है। क़ीमत है। ख़ाली हो जाने पर कुछ भी नहीं। वाह री दुनिया।

"देखो जी, भावुक होने की ज़रूरत नहीं। मैंने महीनेभर का बजट पहले ही बना लिया है। एक नज़र इस पर भी डाल लेना। फिर राजा हरिश्चन्द बनने की कोशिश करना।" श्रीमतीजी के

स्वर ने मेरी तन्द्रा तोड़ी। एक काग़ज़ का पुर्ज़ा मेरे हाथ में थमाकर जूठा कप लिए पैर पटकते हुए पुनः रसोई में चली गई।

काग़ज़ के पुर्ज़े पर नज़रें दौड़ाई तो पाया घर-ख़र्च की लम्बी-चौड़ी रुपरेखा मुँह उठाये प्रस्तुत थी। मकान का किराया। दूधवाले का बकाया। राशन-पानी का ख़र्चा। बच्चे के पब्लिक स्कूल की भारी-भरकम फ़ीस। स्कूटर का पेट्रोल। बिजली का बिल। मोबाईल फ़ोन की सिरदर्दी इत्यादि। महीनेभर के अनेक ज़रूरी ख़र्चे थे। जिनसे मुँह मोड़ना संभव न था।

'क्या होता है बारह-पन्द्रह हज़ार रूपये में आजकल? यदि ओवर टाइम न करूँ तो मैं खुद ही क़र्ज़ में डूब जाऊँ।'मैंने जैसे अपने-आपसे ही प्रश्न किया, 'क्या दिन थे वे भी, जब स्कूल लाइफ़ थी! कुँवारे थे। कोई चिंता न थी। खा-पीकर मस्त रहते थे। चिंता में तब भी पिताजी ही घुलते थे। सच ही कहा है कहनेवाले ने, बेटा बनकर सबने खाया मगर पिता बनकर किसी ने कुछ नहीं पाया।'

"क्या सोचने लगे? कल तनख़्वाह मिलेगी! इस लिस्ट में जो-जो लिखा है। वो सब कर दो तो कुछ भेज देना अपने बाबूजी को।" घरवाली ने मुझे लगभग नींद से जगाते हुए कहा।

"कैसे भेजें देवी जी, उसके बाद बचेगा कितना? यहाँ अम्बानी की तरह बड़ा बिजनेस थोड़े है... दो टके की नौकरी में ज़िन्दगी से जद्दोजहद कर रहे हैं!" कहकर मैंने जम्हाई ली।

"हज़ार या दो हज़ार भेज देना, नहीं तो गाँव भर में कहेंगे कि हमारा मुन्ना तो भेजता होगा मगर बहुरिया नहीं भेजने देती होगी...!" देवी जी ने खुद को अच्छा दिखाने की गरज से कहा।

"क्यों देवता स्वरुप पिताजी के विषय में ऐसा कह रही हो! तुम कुछ नहीं भी भेजेगी तो भी वो सारे गाँव में घूम-घूमकर आज भी कहते हैं हमारे मुन्ना और बहु की जोड़ी तो राम-सीता की जोड़ी है।" मैंने भावनात्मक कार्ड फेंका।

"पर भेजोगे कैसे?" सावित्री देवी बोली, "पिताश्री नेट बैंकिंग तो करते नहीं! पुराना नोकिया फ़ोन इस्तेमाल करते हैं!"

"हाँ ये बात तो सही है पिताश्री नेट बैंकिंग इस्तेमाल नहीं करते! पुराना नोकिया फ़ोन वन जी वाले से ही काम चला रहे हैं गाँव में!" मैंने देवी जी की बात का समर्थन किया, "वैसे भी जहाँ नेटवर्क सरकारी योजनाओं की तरह ग़ायब ही रहता है, वहाँ फोर जी फ़ोन क्या करेगा?"

"क्या यह सच है, कभी-कभार नेटवर्क आ जाये तो आज भी मन्दिर में लड्डू चढ़ाये जाते हैं ग्रामीणों द्वारा!" धर्मपत्नी ने मुझसे प्रश्न किया।

"क्या तुम भी, ग्रामीणों के पास ज़हर खाने को तो पैसा नहीं है और तुम सौ-डेढ़ सौ रुपये किलो के लड्डू चढ़वाने की बात कर रही हो!" मैंने पत्नी जी की मूर्खता पर हँसते हुए प्रहार किया।

"क्या मनरेगा में रुपया नहीं मिलता?" देवीजी का नया प्रश्न!

"उसमें जितना मिलता है, आदमी अपना ही पेट नहीं भर सकता, तो परिवार का भरण-पोषण कैसे करे देवी जी?" मैंने कटाक्ष करते हुए कहा।

"सरकार तो विज्ञापन में ग्रामीणों के लिए बहुत सी योजनाओं का दावा करती है!" इस बार देवी जी के स्वर में आश्चर्य का भाव था।

"अरे सरकारी योजनाएँ नाममात्र की होती हैं," मैंने प्रेमपूर्वक समझाया, "वो जनहित में नहीं, नेताओं के हित में ही बन रही हैं आजादी के बाद से! तभी तो स्विस बैंक में अरबों-ख़रबों का काला धन सड़ रहा है।"

"अब सो जाओ, अगले दिन ड्यूटी भी जाना है आपको!" कहकर देवी जी ने लाइट बन्द कर दी।

"न तुम ऐसी थी और न हम ऐसे थे! ये हालात हमें किस मोड़ पर ले आये? न ठीक से गुज़र है! न ठीक से बसर है! ये कैसा हादसों का शहर है?" अँधेरे कक्ष में सोचते-सोचते मेरी आवाज़ जैसे अपने आप से ही टकरा रही थी।

"शा'इर महाराज अब सो जाओ! मुझे भी सोने दो!" करवट बदल कर देवी जी तो सो गई मगर देर तक गाँव की यादें मेरे मनोमस्तिष्क पर हावी रही और कब मुझे नींद ने अपनी आगोश में ले लिया, मुझे पता भी न चला।

अगले दिन डाकघर पहुँचा तो पिताजी की चिंताओं को दरकिनार करते हुए मैंने पाँच-दस हज़ार रूपये की जगह उन्हें मात्र एक हज़ार रूपये का ई-मनीऑर्डर कर दिया।

●●●

अंत भला तो सब भला

"देख बहना, हमारा भाई-बहन का रिश्ता अपनी जगह है, लेकिन मैं कमीशन के पैसे नहीं छोड़ने वाला। तू पहले मेरा कमीशन का दस हज़ार रुपया दे।" बीच गली में अपना स्कूटर खड़ा करने के उपरान्त ही गुरवीर ने बड़ी भद्दी ज़बान में चिल्लाते हुए कहा। आते-जाते लोग कौतुहलवश वहीं खड़े हो गए।

"भाई, घर के अंदर आ जाओ।" लाजवन्ती, जो अपने पति हरभजन सिंह के साथ ही द्वार पर खड़ी थी, शर्मिंदा होते हुए बोली। लोग-बाग, भाई-बहन के बीच होने वाले किसी नए तमाशे की उम्मीद में, उनके और क़रीब आने लगे। उनके लिए यह बात बड़ी अटपटी थी कि, एक प्रॉपर्टी डीलर भाई, कैसे बेशर्मों की तरह अपनी बहन से कमीशन के पैसे मांग रहा है!

"यहाँ क्या फ़िल्म चल रही है?" गुरवीर ने अपने पीछे खड़े लोगों को झिड़कते हुए कहा, "अरे जाओ आगे बढ़ो। तुम लोगों को कोई काम-धंधा है या नहीं।" खड़े राहगीर शर्मिंदा होकर अपनी राह हो लिए।

"वीर जी, अब आपसे क्या छिपा है? हमारा सारा पैसा, मकान ख़रीदने और रजिस्टरी करवाने में चला गया है।" लाजवंती ने अपना दुखड़ा भाई के आगे रोया। फिर बेमन से अपने पर्स से दस हज़ार रुपए निकालकर भाई की ओर बढ़ा दिए, "ये बंटी की स्कूल फ़ीस के पैसे हैं..." आगे के शब्द लाजवन्ती के मुँह में ही रह गए। बेबस निगाहों से वह भाई की तरफ देखती रही। शायद दया की कोई किरण शेष हो।

"देख बहना, घोडा अगर घास से यारी करेगा, तो खायेगा क्या? फिर तेरे से ज़ियादा थोड़े ले रहा हूँ।" नोट गिनते हुए गुरवीर का स्वर थोड़ा नरम हो गया। उसकी आँखों में हरे-हरे नोटों की हरियाली देखकर नई चमक पैदा हो गई थी। वह पुनः बोला, "कोई दूसरा प्रॉपर्टी डीलर होता तो पच्चीस हज़ार से एक पैसा कम न लेता।"

"सो तो है वीर जी।" लाजवन्ती के पीछे मिट्टी का माधो बने गुरवीर के जीजा हरभजन सिंह ने सहमती में सर हिलाते हुए कहा। हरभजन बेहद दुबला-पतला व्यक्ति था, बिलकुल अपनी पत्नी

लाजवन्ती की तरह। दोनों पति-पत्नी ने अपना पेट काट-काट कर मकान ख़रीदा था। अच्छा भोजन उन्होंने कब किया था? इसका उन्हें ध्यान नहीं।

"तुम यहाँ खड़े-खड़े मेरी छाती पे मूंग क्यों दल रहे हो? बाज़ार से जाकर कुछ सौदा-पानी ले आओ। " लाजवन्ती हरभजन को डांटते हुए बोली, "वीर जी खड़े हैं। उनके लिए कुछ भोजन-पानी तैयार करना है।"

"न बहना, तेरी परजाई घर में इन्तिज़ार कर रही होगी। " गुरवीर ने पैसे जेब के हवाले करते हुए कहा, "तेरे घर किसी और दिन खाऊंगा।" और बिना वक़्त गंवाए अपने स्कूटर को किक मरते हुए गुरवीर वहां से चल दिया।

स्कूटर आँखों से जब तक ओझल न हुआ। लाजवन्ती और हरभजन एकटक उधर ही देखते रहे। पृष्ठभूमि से जब स्कूटर ओझल हुआ तो आकाश में डूबते सूरज की एक चौथाई छवि शेष रह गई थी। सम्पूर्ण वातावरण को रवि किरणों की लालिमा ने घेर लिया था।

"ये साले प्रॉपर्टी डीलर किसी के सगे नहीं होते। अपनी सगी बहन को भी नहीं छोड़ा, कमीशन के पैसे ले लिए। कैसा नीच भाई है, थू! कलंक है साला पंजाबियों के नाम पर!" वही राहगीर जिसे कुछ समय पहले गुरवीर ने तमाशाई होने की झिड़की दी थी। गुरवीर के जाने के बाद दुबारा वहां से गुजरते हुए, अपने साथ चल रहे दूसरे व्यक्ति से इस तरह बोला कि लाजवन्ती और हरभजन को यह संवाद स्पष्ट सुनाई पड़ा। शायद ऐसा कहके उस व्यक्ति ने अपनी भड़ास निकाली थी। हरभजन उनकी तरफ देखकर मुस्कुराभर दिया, जबकि लाजवन्ती का सिर शर्म से झुक गया था। उसकी निगाहें दस हाथ दूर मरे चूहे पर केन्द्रित हो गई थी। जिसका मांस एक कौवा नोचने में व्यस्त था।

०००

"चलो पापा-मम्मी एक बार ले चलो। हमें ज्योता वाली के दरबार ले चलो।" सुबह-सुबह दुकान के बाहर स्टूल पर खड़े होकर गुरवीर एक पुराने कपड़े से दुकान के साइन बोर्ड को चमकाते हुए, ऊँचे सुर में 'माँ की भेंट' गुनगुनाने लगा था।

"जय माता दी प्रापर्टीज।" लाल रंग से साइन बोर्ड पर लिखे बड़े अक्षरों को स्टूल से उतरते हुए, वह धीमे से बुदबुदाया। बोर्ड पर दुकान का पता और मोबाइल फ़ोन न० भी चमक रहे थे। साइन बोर्ड के किनारे पर छोटे अक्षरों में लिखा था —प्रो० गुरवीर मदान।

दुकान के अंदर धूपबत्ती की महक हलके धुएं के साथ वातावरण में तैर रही थी। दुकान के कोने पर लकड़ी का एक छोटा-सा मंदिर था। वैष्णों रानी की एक छोटी-सी सोने की प्रतिमा रखी थी। यह मूर्ति उसने वैष्णों देवी की यात्रा के दौरान तब ख़रीदी थी, जब उसने एक विवादास्पद ज़मीन के सौदे में भरी मुनाफ़ा कमाया था। इस वक़्त उसी मूर्ति के आगे धूपबत्ती जल रही थी। मंदिर छोटा-सा, मगर चन्दन की लकड़ी का बना था। उस पर नक्काशी का खूबसूरत महीन काम हो रखा था, जो देखते ही बनता था। सामने आधुनिक फर्नीचर—मेज़ और कुर्सियाँ, दुकान की शोभा बढ़ा रहे थे। ऊपर गुरवीर का पूरा परिवार रहता था और नीचे का हिस्सा दुकान में तब्दील था।

"ओये भगवाने, कर्मावालिये, पहले चाय तो भेज दे, अपने शौहर के वास्ते। पराठे बाद में

सेक लेना।" इंटरफोन से गुरवीर ने अपनी घरवाली कुलवीर को निर्देश दिया, जो प्रथम तल पर रसोई में चाय-नाश्ता तैयार कर रही थी। तत्पश्चात वह अपनी आराम कुर्सी पर पसर गया। उसने मेज़ के नीचे अपने पैर फैला दिए।

"बोल साँचे दरबार की" कहकर उसने एक ज़ोरदार जम्हाई ली।

"जय" एक तेज स्वर दुकान के बाहर से उभरा। चेहरा जाना-पहचाना था और उसकी आवाज़ भी। इसलिए उसी मुद्रा में चौंकते हुए गुरवीर बोला, "अबे जोगिंदर तू! हुश्यारपुर तों कब आया?"

"बस यारा, पिण्ड से उठके सीधा तेरे पास, तेरे घर चला आ रहा हूँ।" और जोगिंदर ने दोनों हाथ फैला दिए, "आ गले लग जा।"

" क्यों नहीं?" उसी गर्मजोशी से गुरवीर ने कहा। कुर्सी से खड़ा होकर जोगिंदर की तरफ बढ़ा, गले मिलने के लिए।

"आ यारा आ, झप्पी पा ले।" और गले मिलते हुए उसने गुरवीर की पीठ पर ज़ोर से थपकी मारी।

"साले सुंअर! पीठ पर मारने की तेरी आदत नहीं गई।" गुरवीर ने दर्द से करहाते हुए कहा। तमाम अौपचारिकताओं से नबटने के उपरांत गुरवीर ने इंटरफोन हाथ में लेकर अपनी पत्नी कुलवीर कौर को निर्देश देते हुए कहा, "एक चाय और ले आना, पिण्ड से जोगी आया है, चार पराठे और लेती आना। तुझे तो मालूम ही है खाने की मामले में पूरा राक्षस है। राss... क्ष ss... स ss...!" दूसरी बार गुरवीर ने स्वर को थोड़ा-सा लम्बा खींचते हुए राक्षस शब्द को तोड़ते हुए, जोगिन्दर की तरफ बड़ी विचित्र दृष्टि से देखा था। जोगी ने आँखें बड़ी करके अपनी जीभ बाहर निकल कर गुरवीर के कहे अनुसार राक्षस बनने की कोशिश की।

"ये क्या कर रहे हो?" कहते हुए गुरवीर की हंसी छूट पड़ी।

"तेरे कहे को किये में ढाल रहा हूँ यारा। पर ए तुसी चंगा कित्ता पराह। पराठे दा नाम सुनके, मेरे भीतर के राक्षस को ज़ोरों की भूख लग गई है।" अपने पेट पर हाथ मलते हुए जोगी ने कहा और एक डकार ली, "खाली पेट दी डकार हैगी।"

"रब दा शुक्र है, तुसी मुह ते ही डकार लित्ति।" गुरवीर के इस कथन पर दोनों यार खुल के हंस दिए। गप्पों का दौर जारी रहा।

कुछ ही देर बाद कुलवीर कौर पराठे और चाय एक ही तश्तरी लेकर हाज़िर हुई तो जोगिन्दर तपाक बोला, "सत श्री अकाल परजाई जी ... त्वाडे पराठे दियां महक तो अंतर-आत्मा विच समा गई। गुरवीर बड़ा लक्की है। "

"मेरी साली जसविंदर जवान हो गई है। तू कहे तो तेरी बात चलाऊँ यारा!" गुरवीर ने हाथों से अपने बाल सेट करते हुए कहा।

"ओ न जी न। अस्सी छड़े ही चंगे! कहाँ फंसा रहे हो? शादी तो जी दा जंजाल हैगा!" जोगिन्दर कुर्सी पर फैल गया, "फिर तेरा करेक्टर मैं नहीं जानता क्या?" कहकर जोगिन्दर ने पराठे की प्लेट हथिया ली। ठहाका।

"अबे साले, एक तो दे दे। देसी घी के छः पराठे पचा लेगा क्या?" गुरवीर चाय का प्याला हाथ में लिए बोला, "खाली पेट चाय पीने से मेरे पेट में गैस हो जाती है। भागवाने तू खड़ी-खड़ी

क्या देख रही है? एक-दो पराठे और ले आ! ये पाजी तो देने वाला नहीं है!" अपनी घरवाली की तरफ देखकर गुरवीर ने वाक्य ख़त्म किया। कुलवीर कौर को दोनों की बातों में बड़ा लुत्फ़ आ रहा था।

"ले तू भी क्या याद करेगा?" आधा पराठा गुरवीर की ओर फैंकते हुए जोगिन्दर बोला, "किस रहीस से पाला पड़ा है?"

"मैं और ले आती हूँ, मैंने बनाके रखे हैं। " कुलवीर हंसने लगी।

"परजाई तू बैठ आराम से, अपने देवर के साथ गपशप कर।" जोगिन्दर ने कुलवीर कौर का हाथ पकड़ के उसे अपने बगल में बैठा लिया। तीनों प्राणी गपशप करने लगे। हाल ही में घटे गांव के ताज़ा किस्सों को मनोरंजक बनाते हुए जोगिन्दर ने खूब नमक-मिर्च लगा कर सुनाए। कुछ चुटकुले भी। इस बीच चाय का एक दौर और चला। कुलवीर कौर ख़ुशी-ख़ुशी ऊपर जाकर गरमा-गरम चाय और बाकी बचे हुए पराठे भी ले आई थी। जिन्हें भी जोगिन्दर ने अपने मुंह से निगलते हुए विशाल अजगरनुमा पेट में छिपा लिया था। अंत में डकार लेते हुए जोगिन्दर बोला, "मज़ा आ गया परजाई, तेरे हाथ के पराठे खाके। ऐसे स्वाद पराठे पूरी ज़िंदगी में नहीं खाए!"

"अब ये कुर्सी-मेज़ बची है! दस पराठों के बाद इनको भी निगल जा! तेरे एनाकोंडा जैसे पेट में अभी भी काफी जगह होगी?" गुरवीर को अपने हिस्से के पराठे की कुछ कसक बाक़ी थी, "इस तरह तेरा नाश्ते का कोटा भी पूरा हो जायेगा!"

"खबरदार जो देवर जी के लिए एक शब्द भी बोला।" कुलवीर कौर ने अपने पति को टोकते हुए कहा, "एक देवर जी हैं, जो इतनी तारीफ कर रहे हैं। और दूसरी तरफ आप हैं, जो एक पराठा खाकर ऊब जाते हैं! कहते हैं तुझे ठीक से पराठे बनाने भी नहीं आते!" कुलवीर कौर ने जोगिन्दर से गुरवीर की शिकायत की।

"एक दिन का खाना हो तो बन्दा तारीफ़ भी करे!", गुरवीर ने अपनी पत्नी से दिल्लगी करते हुए कहा, "रोज़-रोज़ झेलना पड़े तो पता चले इस जोगी के बच्चे नू!"

"परजाई हीरे दी कदर, जौहरी ही कर सकता है! तवाड़ा ख़सम तो लोहार है! तू इसको फालतू बकवास करने दे! मुझे कोई दिक्कत नहीं! इसे कलसने दे! ये दिल की भड़ास निकलने के सिवा कर भी क्या सकता है? " जोगिन्दर ने कहा तो कुलवीर कौर ठहाके लगाकर हंसने लगी। गुरवीर अपना सा मुंह लेकर रह गया। इस बीच जोगिन्दर की बक-बक ज़ारी रही। जिसे गुरवीर झकमार कर सुनता रहा।

"अरे हाँ कुलवीर, ये ले दस हज़ार रुपए। सेफ में रख देना।" अपनी मेज़ की दराज़ से रूपये निकलने के उपरान्त गुरवीर ने कहा।

कुलवीर ने रुपये और तमाम खाली बर्तन समेटे।जिन्हें लेकर वह ऊपर चली गई।

"कहाँ हाथ मारा। सुबह-सुबह दस हज़ार की मोटी रकम भाभी जी को थमा दी।" जोगी ने दुबारा डकार ली।

"अरे कुछ नहीं यारा। कल बहन लाजवन्ती ने दिए थे। उसको मैंने बढ़िया मकान दिलवाया था और रजिस्टरी भी करवा दी थी। बहुत ही कम दामों में। " और गुरवीर ने शेखी बघारते हुए कल घटित हुआ सारा किस्सा कह सुनाया, "अरे लाजवन्ती तो मेरा कमीशन का पैसा दे ही नहीं रही थी। वो तो मैंने बेशर्म होकर माँगा। मैंने बीच चौराहे पर ही चिल्लाकर कहा था—देख भाई-बहन

का रिश्ता अपनी जगह पर है, लेकिन मैं कमीशन के पैसे नहीं छोड़ने वाला। तू पहले मेरे कमीशन का पैसा दे।" इसे गुरवीर ने अपनी एक बड़ी उपलब्धि मानते हुए जोगिन्दर को 'लाजवन्ती से पैसा मांगने वाला वाक्या' हू-ब-हू दुबारा से सुनाया, "वो तो बहाना बना रही थी कि बंटी की स्कूल की फ़ीस देनी है। मगर मैं कहाँ छोड़ने वाला था!"

"अबे कंजर! सगी बहन को तो छोड़ देता! लानत है तेरे जैसे भाई पर, बहन से भी कमीशन! वो भी बीच रोड में! दोगुनी लानत है तेरे पर!" जोगिन्दर ने गुरवीर को लताड़ा, "अबे बहन और बेटी को तो ज़िंदगी भर दिया है, कुछ लेते थोड़े हैं!"

"देख जोगी, रिश्तेदारी अपनी जगह और कमीशन अपनी जगह।" गुरवीर ने दो टूक शब्दों में कहा, "और ये फालतू की नसीहत रहने दे। अभी-अभी जो तूने चाय-पराठे खाए हैं और कीमती फर्नीचर पर आराम से पसरा हुआ है। ये सब फ्री का नहीं आता है। इसके लिए पैसा लगता है। पैसा ! ऐसे कमीशन छोड़ने लगा तो हो लिया धंधा-पानी। " जोगिन्दर चुपचाप गुरवीर की अमृतवाणी सुन रहा था।

"गुरवीर तू बिजनेसमैन तो बन गया मगर व्यवहारिक नहीं है।" जोगी ने बड़ी गंभीरतापूर्वक कहा।

"वैसे किस काम से आया था तू ?" गुरवीर ने इतनी देर बाद दो टूक शब्दों में जोगिन्दर से आने का प्रयोजन पूछा! जिस तरीक़े से पूछा वो सब जोगी को अच्छा तो नहीं लगा, लेकिन प्रत्यक्ष में उसने अपना क्रोध प्रदर्शित नहीं किया। उसने हृदय में यह तय किया कि सही वक़्त आने पर वो गुरवीर को जवाब देगा।

"क्या बताऊँ यारा ? चाचा जी अब यहाँ अकेले रहते-रहते बोर हो गए हैं! बाक़ी जीवन होशियारपुर में ही बिताना चाहते हैं। वो चाहते हैं कि पंजाब की मिट्टी, पंजाब में ही ठिकाने लगे।" बड़ी ही दर्शनिकतापूर्वक जोगी ने कहा। फिर अपनी सोने की चैन पर उंगली फिराते हुए कहा, "अपना मकान बेचना चाह रहे हैं। किसी और प्रॉपर्टी डीलर को तो मैं नहीं जनता। इसलिए पिण्ड से उठकर सीधा तेरे पास चला आया हूँ। " जोगिन्दर ने अपने होंठो पर मुस्कान लाते हुए कहा।

"अरे यार मेरी बात का बुरा मत मानना।" गुरवीर ने जोगी के पैर पकड़ने की कोशिश की, तो जोगी ने उसके हाथों को घुटनों पर ही रोक दिया, "मेरी नज़र में एक पार्टी है। तुम्हारे चाचा जी का मकान मैंने देखा हुआ है। वह उस आदमी को ज़रूर पसंद आएगा क्योंकि उसको ठीक वैसा ही मकान चाहिए, जैसा चाचाजी ने बनाया हुआ है! चाचाजी को मुंहमांगी कीमत मिल जाएगी।"

जोगी गुरवीर की बातें सुनकर हंसने लगा। उसने मन ही मन सोचा! ये बिजनेसमैन है। इसके लिए मान-अपमान, रिश्ते-नाते कुछ भी मायने नहीं रखते। शायद लक्ष्मी का वाहन 'उल्लू' इसलिए ही है कि जिसके सिर पर पैसा नाचता है। वह खुद 'उल्लू' हो जाता है। यहाँ इसे दोस्त नहीं, दोस्त की शक्ल में आते हुए पैसे दिखाई दे रहे हैं! इसलिए उम्र में मुझसे काफ़ी बड़ा होते हुए भी मेरे पांव छूने को तैयार है।

"क्या सोच रहे हो मित्र?" गुरवीर ने जोगी को सोचपूर्ण मुद्रा में देखा तो बोला, "इसमें तुम्हारा भी फायदा है। मैं अपनी कमीशन में से तुम्हे कुछ प्रतिशत दे दूंगा।"

"मैं सोच रहा हूँ कि कहीं लक्ष्मी का वाहन 'उल्लू' तू ही तो नहीं है!" जोगिन्दर ने एक ज़ोरदार ठहाका लगाते हुए कहा।

"अरे यार मैं बुरा नहीं मानूंगा, तू कुछ भी कह!" गुरवीर हंसते हुए बोला, "तू मेरा भाई है! सच्चा दोस्त है!" कहते हुए जोगी के हाथ को चूमकर गुरवीर यह जताने लगा कि वह जोगी को कितना मानता है।

"चल फिर देर क्यों कर रहा है, कहीं ग्राहक हाथ से निकल न जाये? मैं झाड़-पोंछकर स्कूटर तैयार करता हूँ।" फिर गुरवीर ने इंटरफोन पर अपनी बीबी से संपर्क साधा, "सुन भगवाने मैं जोगी के साथ, उसके चाचा के घर जा रहा हूँ। मेरे लिए दिन का खाना मत बनाना।"

फिर अपनी जेब में रखे मोबाइल फ़ोन से उसने एक फ़ोन लगाया। जो तुरन्त लग गया।

"अरे कालरा साहब कहाँ व्यस्त हैं? इतनी देर से फ़ोन ट्राई कर रहा हूँ कि अगर रॉकेट होता तो उसका पृथ्वी से चाँद तक का सफर तय हो जाता।" गुरवीर ने मज़ाक़िया मूड में कहा।

"तो पृथ्वी पर क्या कर रहे हो?" कालरा ने भी नहले पर दहला मारते हुए कहा, "उसी रॉकेट में बैठकर चाँद पर निकल जाते!"

"मज़ाक़ छोडो यार, मैंने तुम्हें ख़ास इसलिए फ़ोन किया है कि एक बहुत बड़े फायदे का सौदा हाथ में आ गया है।" गुरवीर ने तुरंत मुद्दे पर आते हुए कहा, "एक कोठी है, कोठी क्या, महल है महल!"

"तुम प्रॉपर्टी डीलर वालों का भी अजीब रवैया है। हमारे महल को तो झोपड़ा बताकर ख़रीदते हो! और अपने झोपड़े को भी महल बता कर बेचते हो!" कालरा ने व्यंग किया। फ़ोन की सभी बातें जोगिन्दर भी सुन रहा था, क्योंकि मोबाइल का लाऊड स्पीकर ऑन था।

"भाई तेरे को तो पता ही है, अगर दो पैसे का फ़ायदा न हो, तो दुकान खोलकर क्या फ़ायदा? ख़ैर मैं तो तेरे फ़ायदे की बात कह रहा था अब तू नहीं सुनना चाहता तो कोई बात नहीं!" इतना कहकर गुरवीर ने फ़ोन डिस्कनेक्ट कर दिया। वह समझ चुका था कि कालरा से बात करके दाल गलने वाली नहीं।

गुरवीर ने धड़ाधड़ दो-चार फ़ोन और किये। लेकिन इस बार लाऊड स्पीकर ऑफ़ कर दिया ताकि जोगिन्दर उसकी कोई बात न सुन ले! क्योंकि ऐसी बातों से गुरवीर का चेहरा उजागर होता है। उसके चेहरे पर छिपा भेड़िये का चेहरा, लोगों को नज़र आने लगता है! अंतिम फ़ोन करते वक्त उसके चेहरे पर विजयी मुस्कान तैरने लगी। शायद उसने अंतिम व्यक्ति को नए सौदे के लिए पटा लिया था। इस बीच जोगी माचिस की तिल्ली से दांतों की सफाई कर रहा था। साथ ही वह सोच रहा था कि मेरा दोस्त कितना बड़ा शिकारी बन गया है। जो किसी भी सूरत में शिकार को हाथ से नहीं निकलने देना चाहता। दाँत खुरचने वाली मुद्रा में ही जोगी, गुरवीर के पीछे-पीछे बाहर खड़े स्कूटर में बैठने तक चलता रहा।

०००

स्कूटर ठीक चाचा करनैल सिंह की कोठी के सामने रुका। खुली हवादार दो मंज़िला कोठी के सामने छोटा सा बगीचा, कोठी को चार चाँद लगा रहा था। जहाँ अनेक प्रकार के फूलों के पौधे थे जिनमें बेला, गुलाब, चम्पा, जूही, चमेली, सदाबहार आदि के फूलों की सुगन्ध वातावरण को महका रही थी। चाचाजी ने द्वार खोला तो पहले जोगी ने चाचाजी के चरण छुए। तो जोगी को "ज्यून्दा रह पुत्तर।" का आशीर्वाद मिला, फिर गुरवीर ने भी उसका अनुशरण करते हुए कहा, "पैरी पोणा चाचा

जी।"

"ज्यून्दा रह पुत्तर।" जोगिन्दर के बाद चाचा जी ने गुरवीर को भी उसी स्वर में आशीष दी।

"आहा! चिकन की कितनी जबरदस्त खुशबू आ रही है। " भीतर कक्ष में कुछ सूंघते हुए जोगिन्दर बोला। गुरवीर जोगिन्दर के व्यवहार पर हैरान था कि, 'नाश्ते में दस पराठे खाने वाले व्यक्ति को इतनी जल्दी भूख कैसे लग आई है? कहीं ये आदमी गाँव में पिछले आठ-दस दिन से भूखा तो नहीं था?'

"कल तेरा फ़ोन आते ही मैंने खाने-पीने की तैयारियाँ शुरू कर दी थी," चाचा जी ने दरवाज़ा भेड़ते हुए कहा, "कल ही व्हिस्की की छह बोतलें फौजी कैंटीन से उठा लाया था और आज सुबह-सुबह चार किलो चिकन ले आया था।"

"छह बोतल व्हिस्की और चार किलो चिकन!" गुरवीर हिसाब-किताब लगाते हुए बोल पड़ा, "कम से कम दो-ढाई हज़ार रुपया तो खर्च हो गया होगा चाचा जी! कोई बड़ी पार्टी-शार्टी कर रहे हैं, पंजाब जाने से पहले!"

"अबे ये हमारे खाने-पीने का तरीक़ा है मक्खीचूस।" जोगी ने चाचाजी की तरफ़ देखकर कहा। दोनों चाचा-भतीजे ठहाका लगाकर बड़ी ज़ोर से हँसे।

"ये तो हमारे दो दिन का कोटा है। " चाचाजी ने सोफ़े पर फैलते हुए कहा, "सब कुछ तैयार है। जग में पानी है। काँच के प्याले हैं। पीने को शराब। खाने को चिकन कबाब। अरे खड़े-खड़े क्या सोच रहे हो, बैठो और टूट पड़ो। जश्न मनाओ।" चाचाजी ने बड़े ही रहीसों वाले अंदाज़ में कहा। तीनों प्राणी दावत का लुत्फ़ लेने लगे। गप्पशप का दौर भी ज़ारी था। जोगिन्दर ने गांव के ताज़ा किस्से फिर से सुनाने शुरू कर दिए। जिन्हें सुन-सुन गुरवीर पहले ही पक चुका था। इस बीच चाचाजी व्हिस्की की एक बोतल निपटा चुके थे! गुरवीर और जोगी को भी कुछ कुछ चढ़ने लगी थी, ये दोनों जने दूसरी बोतल से पैग बनाकर पी रहे थे, जो अभी आधी भी ख़त्म नहीं हुई थी।

"चाचा जी, एक बात बताओ।" गुरवीर ने करनैल सिंह की तरफ़ देखते हुए ऐसे पूछा, जैसे वो कोई अजूबा हों, "आपको पीने से कोई रोकता नहीं।"

"अब कौन रोकेगा? जब तक तुम्हारी चाची ज़िन्दा थी, उसने 'वाहेगुरु जी' दी सौं देकर कभी पीने नहीं दिया। बस उसकी शराबी आँखों से पीते थे।" करनैल सिंह ने नशे की अधिकता में अपने दिल की बात कही। उसके आगे अपनी स्वर्गीय पत्नी सतनाम कौर का चेहरा घूम गया। सतनाम की मुस्कुराती हुई एक बड़ी-सी फोटो दीवार पर टंगी थी। दोनों पति-पत्नी में बड़ा प्यार था। पैंतीस बरस तक दाम्पत्य सुख का दोनों ने आनंद लिया, मगर अौलाद के सुख से वंचित रहे। अपने बड़े भाई जरनैल सिंह के इकलौते बेटे जोगिन्दर सिंह को करनैल सिंह ने अपनी सारी जमापूंजी देने का निश्चय किया था और शेष जीवन पंजाब में भतीजे के साथ बिताने का फैसला किया था। इसलिए पंजाब से जोगी को बुलवाया था, ताकि सब लेन-देन उसके सामने ही हो सके, जिसके साथ जीवन बिताना है। इस बीच खाते-पीते करनैल सिंह अपनी पत्नी से जुडी कई यादें सुनते रहे।

"चाचा जी, एक बात पूछूँ?" गुरवीर ने कहा।

"पूछो!" करनैल सिंह ख़ाली गिलास को मेज़ पर रखते हुए और चिकन लेग पीस उठाते हुए बोले।

"चाची जी की फोटो पे हार क्यों नहीं है?" गुरवीर ने मदिरा के ख़ुमार में झूमते हुए कहा।

"दुनिया की निगाह में भले ही सतनाम मर चुकी है, मगर मेरे लिए वो आज भी ज़िंदा है।" करनैल सिंह ने अजीब से अंदाज़ में कहा। तीनो प्राणी सामने दीवार पर टंगी चाची सतनाम कौर की फोटो की तरफ ध्यान से देखने लगे।

कुछ समय बाद एक कॉल बैल बजी।

"मैं देखता हूँ। " व्हिस्की का तीसरा पैग हलक से नीचे उतारने के बाद जोगी खड़ा होते हुए बोला।

"कौन आया होगा इस वक़्त?" चाचाजी ने हैरानी व्यक्त की।

"होगा कौन? अमित सुनेजा आया होगा!" गुरवीर ने झूमते हुए कहा।

"कौन अमित सुनेजा?" जोगी जी को भी मदिरा चढ़ गई थी।

"चाचा जी की कोठी खरीदना चाह रहा है। मैंने घर से निकलने से पहले ही उसे फ़ोन कर दिया था और चाचा जी का पता लिखवा दिया था।" गुरवीर ने ख़ाली प्याला मेज़ पर रख दिया और चिकन का लेग पीस उठकर चबाने लगा।

"करनैल साहब का मकान यही है।" दरवाज़ा खुलते ही आगंतुक ने जोगिन्दर से प्रश्न क्या।

"आजा भई सुनेजा ... भीतर आ जा। " इससे पहले जोगी कुछ कहता। पीछे से गुरवीर का तेज स्वर उभरा।

"आओ जी बैठो सुनेजा साहब। सही मौक़े पर आये हो, एक पैग तो लेना बनता ही है!" चाचाजी बोले, "जोगी जा, किचन से एक गिलास उठा ला।"

"आप लोग भोजन कीजिये। मैं सोफे पर बैठकर, उधर आप लोगों के फ्री होने का इन्तिज़ार करता हूँ। " सुनेजा ने औपचारिकतावश कहा।

"भई मना मत कर वरना चाचाजी नाराज़ हो जायेंगे। गपशप के बीच काम-धाम की बात भी कर लेंगे। जिनकी कोठी तूने लेनी है, वो करनैल साहब, यानि हमारे प्यारे चाचाजी सामने बैठे हैं। मैं यानि प्रॉपर्टी डीलर गुरवीर भी यही बैठा हूँ। " गुरवीर ने लेग पीस सुनेजा के आगे बढ़ाते हुए कहा।

"मैं अपने आप खा लूंगा भाई साहब।" जो सुनेजा अब तक शर्म की मूर्ति बना औपचारिकताएं निभा रहा था। अचानक मेजबानों के रंग में रंग गया, "पहले कुछ पी तो लूँ।" सबका मिश्रित एक ठहाका सा पूरे वातावरण में गूंज गया।

"ये हुई न पंजाबियाँ वाली गल!" चाचाजी ठहाका लगते हुए बोले, "भला खाण-पीण विच शर्म कैसी?"

लगभग दो-ढाई घंटे तक खाने-पीने के बाद सुनेजा ने बियाने के पचास लाख रूपये नकद चाचा करनैल सिंह के हाथ में दिए। पौने चार करोड़ में सौदा तय हुआ था। तब जाकर सुनेजा झूमता-गाता हुआ विदा हुआ ये कहकर,"चाचा जी तवाड़ी व्हिस्की तो जबरदस्त है, मैं एक बोतल थैले में डालकर अपने साथ ले जा रहा हूँ.... तवानु ऐतराज़ तो नई हैगा!"

"ओ ऐतराज़ कैसा पुत्तर! एक नहीं तू दो बोतल ले जा पुत्तर!", चाचा जी का जवाब था, "पूरा एन्जॉय कर लाइफ दा।"

"ले भाई, फ़िलहाल चार लाख पकड़!" सुनेजा के जाने के बाद करनैल सिंह ने गुरवीर को पचास लाख रुपये में से निकालकर चार लाख थामते हुए कहा।

"और जोगी, बाक़ी रुपया तू रख।" चाचाजी ने अटैची जोगिन्दर को थमाते हुए कहा, "अब मुझको और मेरी सम्पति को तूने ही संभालना है।" कहते हुए करनैल सिंह की आँखों में आँसू आ गए और जोगी की आँखें भी नम हो उठीं।

"थैंक यू चाचाजी....," गुरवीर ने अपने हाथों में पहली बार कमीशन के इतने रुपये देखे थे, "मैंने आज तक किसी को कमीशन का पैसा एडवांस में देते नहीं देखा?"

"ओ गुरवीर पुत्तर, थैंक यू तो तुम्हारा है जी! क्योंकि मुझे न तो प्रॉपर्टी डीलर के पास जाना पड़ा! ऊपर से बिना किसी अड़चन के मुझे मुंह मांगे दाम मिल गए हैं! सब तेरी वजह से!" चाचाजी ने नशे में झप्पी पाते हुए गुरवीर से कहा, "जिस दिन पूरे पैसे मिल जायेंगे, बाक़ी कमीशन और इनाम के रूप में तुझे उस दिन भी और पैसे दूंगा!"

"थैंक्यू चाचाजी।" गुरवीर ने मारे ख़ुशी के चाचाजी को कसकर बाँहों में भींच लिया।

"अच्छा अब मेरा काम पूरा हो गया। मैं भी चलता हूँ। चाचाजी। " गुरवीर ने रुपये जेब में डालते हुए कहा।

"नहीं..... अभी तेरा काम ख़त्म नहीं हुआ है।" जोगी ने गुरवीर का हाथ पकड़ लिया।

"मतलब!" गुरवीर हैरानी से बोला।

"मतलब ये कि दुनिया में तीन तरह के इंसान होते हैं!" जोगिन्दर का स्वर बुलंद हो गया, "एक चाचाजी जैसे, जो दूसरों के लिए जीते हैं! दूजा मैं, जो खुद के लिए भी जीते हैं, और दूसरों के लिए जीते हैं! तीजे तुझ जैसे, कमीने स्वार्थी और खुदगर्ज होते हैं, जो सिर्फ़ अपने लिए जीते हैं। थू है तुझ पर ...," कहते हुए जोगिन्दर ने गुरवीर के चेहरे पर थूक दिया।

"अभी तू होश में नहीं है।" गुरवीर ने रूमाल से अपने चेहरे पर गिरे थूक को साफ़ करते हुए कहा।

"तू ये मत समझना, मैंने शराब पी है, तो ये सब कह रहा हूँ। मैं पूरे होशो-हवास में हूँ।" जोगिन्दर ने चाचाजी को सारा किस्सा कह सुनाया। जो कुछ गुरवीर ने बहन लाजवन्ती के साथ किया था। चाचाजी ने जिन निगाहों से गुरवीर की तरफ़ देखा। उसके बाद गुरवीर चाचाजी से नज़रें नहीं मिला मिला सका। वह आत्मगिलानी से भर उठा! उसे पहली बार अहसास हुआ कि बिजनेस करते-करते वो कितना नीच-स्वार्थी हो गया है? बहन लाजवन्ती जो इस वक़्त एक-एक पैसे के लिए संघर्ष कर रही है, उससे पैसा लेकर उसने कितना बड़ा गुनाह किया है? उसे बिंदास चाचा करनैल सिंह जी और दोस्त जोगी के अपना चरित्र बड़ा नीचता से भरा जान पड़ा, अपराध बोध से ग्रस्त गुरवीर के आँसू छलछला आये!

"कायर अब सर झुकाये क्या खड़ा है? ले पकड़ ये पैसा, ये मेरी तरफ से बहन लाजवन्ती को दे देना। उसे बंटी की स्कूल फ़ीस भरनी होगी।" जोगिन्दर ने अपने सूटकेस में से दो लाख रुपये गुरवीर के मुंह पर मरते हुए कहा। पैसे फर्श पर गिर पड़े, "बहन लाजवन्ती भी तो देखे कि उसके सगे भाई से बड़ा दिल उसके मुंहबोले भाई जोगी का है।"

"मुझे और शर्मिंदा मत करो, मेरे भाई जोगी....," गिरे हुए पैसे लौटते हुए गुरवीर ने जोगिन्दर से कहा, "तुम अपने पैसे अपने पास रखो! मैं अभी बहन लाजवन्ती के घर जाकर उसे आज ये चार लाख रुपये दे दूंगा और अपने गुनाह की माफ़ी भी मांग लूंगा।"

"साले तुझे जैसे लोगों ने ही पंजाबियों का नाम ख़राब किया है। " जोगिन्दर का गुस्सा बरक़रार था।

"प्लीज़ जोगी मुझे माफ़ कर दे, मैं तेरे पांव पड़ता हूँ।" गुरवीर सचमुच जोगिन्दर के चरणों में झुक गया।

"अबे निर्लज माफ़ी मांगनी हैं तो बहन लाजवन्ती से मांग, मेरे पांव क्या छूता है!" जोगिन्दर का अक्कडपन अब भी चरम पर था।

"ओये जोगी, मेरे प्यारे पुत्तर, अब माफ़ भी कर दे गुरवीर नू। " चाचा करनैल सिंह ने जोगिन्दर के गाल पर अपने हाथ से हलकी सी प्यारी सी थपकी मारी, "सुबह का भुला, अगर शाम को घर आ जाए. तो उसे भुला नहीं कहते।"

चाचाजी के आग्रह करने पर दोनों दोस्त गले मिल गए। मदिरा में इतना असर तो होता ही है कि जो कुछ आदमी के दिल में होता है। ज़ुबान पर आ ही जाता है और दिल से कही हुई बात हमेशा दिल पे असर करती है, गहरे और गहरे तक!

"गुड! इसे कहते हैं, अंत भला तो सब भला।" दोनों को गले मिलता देख चाचा करनैल सिंह के मुंह से यह संवाद अपने-आप निकल पड़ा।

●●●

संघर्ष

"शुक्र है तुम्हें होश आ गया!" ज्वर से बेसुध पड़े युवा कृष्णा को थोड़ा होश में आता देख, बूढ़े मनोहर काका ने जैसे रब का शुक्रिया करते हुए कहा।

"आज क्योंकर मेरी तिमारदारी करने को आये हैं, उस दिन तो लड़-झगड़कर तुमने सारे रिश्ते ही ख़त्म कर दिए थे!" मनोहर का चेहरा देखते ही कृष्णा के हृदय में पुरानी कड़वी यादें तैर गईं।

दोनों एक ही गाँव के थे। एक साथ ही शहर में मजदूरी करने आये थे। मनोहर का लड़का 'मोहन' आज जीवित होता तो कृष्णा की उम्र का ही होता। मनोहर की पत्नी 'लक्ष्मी' भी उस अभागे पुत्र को जन्म देते ही चल बसी थी। खुशदिल और ज़िंदादिल मनोहर का धीरे-धीरे सब चीज़ों से मोहभंग हो गया था। वह अन्तर्मुखी जीवन जी रहा था, लेकिन बिना मजदूरी ख़ाली पेट रहने से तोकाम नहीं चलेगा।

"काका, यहाँ गाँव में रहेंगे तो यक़ीनन हम भी एक न एक दिन भूख से मर जायेंगे! अच्छा है जब तक हाथ-पाँव चल रहे हैं, कुछ मेहनत-मजदूरी कर ली जाये। हम दोनों ही ठहरे अंगूठाछाप, पढ़े-लिखे तो हैं नहीं, पर शहर में मजदूरी करके अपना पेट तो भर ही लेंगे!" कृष्णा ने शहर जाने से पहले बूढ़े मनोहर को इस तरह कई दिन कई बार समझाया। तब कहीं जाकर मनोहर को बात समझ में आई। माँ-बाप की मौत के बाद कृष्णा भी अकेला हो गया था, अतः गांव में रुकने का कोई कारण नहीं था।

अगली सुबह दोनों जने रोजी-रोटी के जुगाड़ में शहर को आ गए। जहाँ दोनों को मजदूरी मिली। उस कार्यस्थल से थोड़ी दूर पर ही उन्होंने झोपडी बना ली थी। शुरू में तो कुछ दिन दोनों में अच्छी पटी, मगर धीरे-धीरे दोनों के बीच अनबन हो गई। हुआ यूँ कि कच्ची दारू पीने के बाद, दोनों

में एक दिन खाने-कमाने को लेकर अच्छी-खासी बहस हो गई। हालाँकि कभी-कभी पीने के बाद उनकी हल्की नोक-झोंक हो जाया करती थी और अगल-बगल की और झोपड़ियों के मजदूर व उनके बीवी-बच्चे चाचा-भतीजा की इस लड़ाई और कौतुहल को देखने मज़मा लगाकर अक्सर इकट्ठा हो जाया करते थे। उनकी बातों से सभी को रस मिलता था। किसी को क्या मालूम था कि आज बात हद से ज़ियादा बढ़ जाएगी।

"साले तू क्या कमाता है? तेरे से बूढ़ा हूँ, मगर मेरे बाजुओं में तुझसे ज़ियादा मेहनत करने की ताकत है।" मनोहर ने अपनी भुजाओं की मछलियों को सहलाते हुए कहा। मनोहर के ठीक बगल में ही खड़ी एक युवती शरमा गई और थोड़ा पीछे हट गई। बाक़ी लोगों की ये सुनकर हँसी छूट गई। कृष्णा खुद को लज्जित महसूस करने लगा।

"काका, ये तू नहीं, थैली की कच्ची शराब बोल रही है!" कृष्णा ने मनोहर के सामने पड़ी शराब की ख़ाली थैली को देखकर कहा।

"पीता हूँ तो अपने पैसे की, तेरे बाप के पैसों की तो नहीं पीता!" मनोहर फ़ैल गया।

"काका! मरे हुए बाप पे न जा।" कृष्णा क्रोधित हो उठा।

"क्या कर लेगा तू हरामखोर मरेगा मुझे? ले मार....." मनोहर नशे में झूमता हुआ कृष्णा के आगे मुँह करके खड़ा हो गया। पीछे खड़े एक-दो बुज़ुर्ग हाथ के इशारे से कृष्णा को शांत रहने के लिए कह रहे थे।

"अगर तू बाप की उम्र का नहीं होता तो आज मैं सही में तेरा मुँह तोड़ देता!" मुट्ठी भींचकर लगभग घूसा दिखाते हुए कृष्णा बूढ़े मनोहर को बोला।

"ठीक है तू अपना रहना-ठिकाना कहीं और कर ले।" कहते हुए नशे की अधिकता में मनोहर वहीं सड़क पर लेट गया और वहीं ऊँघने लगा।

इस घटना के बाद कृष्णा ने खुद के रहने के लिए चार झोपड़े छोड़कर, एक दूसरा झोपड़ा बना लिया। दोनों एक-दूसरे को देखते तो ज़रूर थे, मगर दोनों के बीच बातचीत, दुआ-सलाम बंद थी। मनोहर को अपने कहे और किये पर काफ़ी अफ़सोस था, मगर किया क्या जा सकता था? तीर-तरकश से छूट चुका था। हर घाव भर जाता है, मगर वाणी का प्रहार बड़ा निर्मम होता है। चाहकर भी व्यक्ति भूल नहीं पाता, जब भी वह कुछ दोस्ती करने की सोचे, ज़हर बुझे शब्द कानों में गूंजने लगते थे मनोहर के कहे शब्द, "तेरे बाप के पैसों की तो नहीं पीता!"

इस घटना को लगभग छह महीने बीत गए थे। काम की साइट पर पिछले तीन-चार दिनों से कृष्णा नहीं दिखाई पड़ रहा था। उधर शाम को अपने झोपड़े से आते-जाते भी कृष्णा दिखाई नहीं देता था। अतः मनोहर उसकी खोज-ख़बर लेने को बैचेन हो उठा। उसने कृष्णा के साथ काम करने वाले मजदुर बंसी से पूछा।

"का रे बंसी, कहाँ हो आजकल?" मनोहर ने बात कहने के लिए भूमिका बाँधी।

"राम-राम काका, हम तो यहींये रहत बा, आप ही अपनी धुन मा मगन रहत हो!" बंसी ने सुरति-तम्बाकू रगड़ते हुए कहा और क़रीब आकर मनोहर को भी अपनी ताज़ा बनाई खैनी खाने का नौयता दिया।

"आजकल कृष्णा नहीं दिखाई पड़ रहा है?" चुटकीभर खैनी उँगलियों की मदद से उठाते हुए मनोहर ने बंसी से पूछा।

"आपको पता नहीं चाचा, उसे आज बुखार आये चार दिन हो गए हैं।" बंसी ने कहा, "कुछ खा-पी नहीं रहा है, बेहोश हो जा रहा है।"

"तो मुझे पहले क्यों नहीं बताया?" मनोहर ने तड़पते हुए कहा, "तुझे तो पता है हम एक ही गाँव के हैं।"

"कृष्णा ने मुझे क़सम दी थी कि आपको कुछ न बताऊँ!" बंसी ने ऐसा कहा तो मनोहर का हृदय अपराध बोध की भावना से भर उठा। बंसी भी उस घटना के बारे में जानता था, इसलिए ख़ामोश रहा था। आज मनोहर पूछ बैठा तो बंसी ने बताया।

"क्या बात कर रहे हो बंसी?" मनोहर ने खुद पर नियन्त्रण करते हुए कहा, "वो तो नसमझ है, कम-से-कम तुम्हें तो बताना चाहिए था।"

"अच्छा काका मैं चलूँ, काफ़ी काम बचा हुआ है।" कहकर बंसी चला गया।

बंसी के जाने के बाद मनोहर अपने अतीत में खो गया। उसे अपने मृत पुत्र 'मोहन' की याद हो आई। जिसकी मौत तेज बुखार में दिमाग़ की नस फटने से हो गई थी। उस रोज़ मनोहर बेबस खड़ा, कभी डाक्टर को देखता तो कभी अपने मृत पुत्र को। 'नहीं मैं कृष्णा को नहीं मरने दूँगा।' मनोहर ने उसी वक़्त मन-ही-मन प्रण किया, चाहे कृष्णा के ताने सुनने पड़ें। मैं उसका इलाज़ करवाऊंगा और उससे अपने बुरे बर्ताव की क्षमा भी मांग लूंगा। इतना सोचकर मनोहर ने बगल में काम कर रहे साथी मजदूर से बोला, "आज का बाक़ी काम तुम देख लेना लक्ष्मण, मुझे कृष्णा की तीमारदारी करनी है वो काफ़ी बीमार है।"

"हाँ आपको ज़रूर जाना चाहिए मैंने आपकी और बंसी की सारी बातें सुन ली थी, लेकिन खाना खाकर जाते!" लक्ष्मण ने फावड़ा ज़मीन पर रखते हुए कहा।

"कोई नहीं, मेरा खाना तुम खा लेना, मुझे अभी भूख नहीं है, मैं बाद में घर जाकर कुछ खा लूंगा।" मनोहर तेज़ कदमों से लक्ष्य की तरफ़ चल दिया।

अपने सभी पूर्वाग्रह तोड़कर मनोहर, अविलम्ब डाक्टर मिश्रा को लेकर कृष्णा की झुग्गी में पहुँच गया। चटाई पर अर्धमूर्छित अवस्था में कृष्णा पड़ा हुआ था। तेज़ बुखार से उत्पन्न कमज़ोरी के कारण वह कुछ भी देख, सुन या कह पाने की स्थिति में नहीं था। बीमारी और बढ़ी हुई दाड़ी ने चार दिनों में ही कृष्णा को काफ़ी कमज़ोर और लाचार बना दिया था। डाक्टर मिश्रा ने कृष्णा का पूरा मुआयना करके ज़रूरी दवाई एक पर्ची पे लिख दीं। फ़िलहाल एक इंजेक्शन और कुछ हिदायत करके डाक्टर मिश्रा वहाँ चले गए, ये कहकर "मरीज़ का कल सुबह तक बुखार उतर जायेगा और तुम इसके सर पर बस ठण्डे पानी की पट्टी बदलते रहो।"

"जी।" और बूढ़ा मनोहर पूरी रात ठण्डे पानी की पट्टियाँ बदलता रहा। सुबह के नौ बज रहे थे तब कहीं कृष्णा को होश आया। उसे लगा की उसने 'मोहन' की सेवा की है। कृष्णा के रूप में उसने मोहन को फिर से मरने से बचा लिया है। होश में आते ही कृष्णा पुरानी घटना की याद करके आज मनोहर पर फिर बरस पड़ा, "चले जाओ।"

"मैं उस दिन के किये पर लज्जित हूँ बेटा। तुम्हारी क़सम उस दिन से मैंने शराब पीना भी छोड़ दिया है।" हाथ जोड़कर माफ़ी मांगते हुए मनोहर बोला।

"मुझे तुम्हारा अहसान नहीं चाहिए। मुझे बुखार से मर जाने देते।" कृष्णा ने लगभग रो देने के स्वर में कहा, "वैसे भी एक मजदूर का जीना भी क्या जीना? और मरना भी क्या मरना?"

"तुम्हारा और मेरा संघर्ष एक जैसा ही है कृष्णा। तुम्हें मेहनत करता देख, मुझे भी इस वृद्ध अवस्था में जीने का हौंसला मिलता है।" कहते हुए बूढ़े मनोहर ने कपड़ा भिगो कर पुनः कृष्णा के माथे पर रख दिया, "और फिर तुम्हें बचाकर मुझे आज ऐसा लग रहा है कि मैंने अपने मोहन को बचा लिया है।"

"काका...!" काफ़ी कमज़ोर स्वर में कृष्णा ने अति कृतघ्न भाव से कहा। चार दिनों के इस बुखार ने उसे बुरी तरह तोड़ दिया था। उसे पहली बार परदेस में किसी अपने के होने का अहसास हुआ।

"अच्छा ये बुखार की दवा की बाक़ी खुराक चार-चार घंटे में ले लेना। दूध और ब्रेड मेज़ पर रखें हैं। पड़ोस की विमला चाची को मैंने बोल दिया है कि वह बीच-बीच में आकर तुम्हें देखती रहे। तुम्हारी ख़ैर-ख़बर लेती रहे।" खड़ा होते हुए मनोहर ने कहा, "अच्छा मैं चलता हूँ, आज की धियाड़ी बनाने। समय से नहीं पहुंचा तो ज़ालिम ठेकेदार पूरी धियाड़ी नहीं देगा।"

●●●

टुकड़ा टुकड़ा यादें

वह अब भरी दुनिया में अकेली थी। ऐसा नहीं कि उसका कोई सगे वाला जीवित न था। उसके दो बेटे थे और एक बेटी। बड़ा बेटा बहू द्वारा कानाफूसी करने पर कबका उनसे अलग हो चुका था और छोटा बेटा ग़लत संगतों में पड़कर तबाह-ओ-बरबाद। उसका जीना, न जीना एक समान था। कब घर आता और कब निकल जाता? इसका पता शायद उसे भी न रहता! कई बार नशे की लत के चलते कई-कई दिनों तक वह घर से दूर रहता। बेटी तो फिर पराया धन थी और पिछले चार-पांच सालों में वह कभी-कभार ही मायके आई थी। पहले-पहल तो वह खूब आई मगर बाद में वर्ष बीतने पर माँ के प्रति मिलने का उसका उत्साह भी कम हो गया।

घर की दरो-दीवारें न जाने कब से रंग-रोगन की मांग कर रही थीं। कई जगह पपड़ियाँ जम गई थी तो कई जगहों से पलस्तर भी झड़ गया था और ईंटें बाहर को झाँक रही थी। भद्दी दीवारें मॉर्डन आर्ट का बेहद ख़ूबसूरत नमूना लग रही थी। अतः देखने वाला सहजता से अनुमान लगा सकता था कि इस घर में रहने वालों की आर्थिक स्थिति कितनी जर्जर होगी। घर सिलाप की अजीब-सी दुर्गन्ध से भरा हुआ जैसे किसी ऐतिहासिक इमारत के खण्डहर में विचरते वक़्त महसूस होती है। फर्नीचर के नाम पर टूटी-फूटी दो चारपाइयाँ। जिनके निवार जगह-जगह टूटे हुए तथा नाड़े व अन्य रस्सी से बड़े ही भद्दे ढंग से बांधकर गांठे हुए थे। लकड़ी की दो पुरानी कुर्सियाँ व एक मेज़। जैसी की पुलिस स्टेशनों में नज़र आती है। मेज़ के तीन पाए सुरक्षित थे। चौथे पाए के स्थान पर एक टीन का पीपा था। जिसके ऊपर सही से तालमेल बिठाने के लिए एक-दो किलो का डालडे का डिब्बा और पत्थर सुव्यवस्थित ढंग से रखा गया था। इसके अलावा एक लोहे की आलमारी थी

जो जगह-जगह से जंग खाई हुए थी। फर्नीचर और घर की इस दुर्दशा के लिए शायद उसका छोटा लड़का ही काफी हद तक ज़िम्मेदार था। घर का सामान धीरे-धीरे उसके नशे की भेंट चढ़ गया था। केवल खाने-पीने के कुछ टूटे-फूटे बर्तनों या रोज़मर्रा के इस्तेमाल की कुछ वस्तुओं को छोड़कर। इसके अलावा आलमारी के भीतर वह बुढ़िया जितना रख पाई थी। बचा रह गया था। जब कभी तन्हाई में कमरे का दरवाज़ा बंद करके वह आलमारी के कपाट खोलती थी तो यादें घेर लेती थी आलमारी खोलते वक़्त वह कमरे का दरवाज़ा शायद इसलिए ही बंद करती थी कि कहीं कल्लन की नज़र इस सामान पर पड़ गई तो यह सामान भी ग़ायब न हो जाएँ। आलमारी को छूते ही पुरानी यादें तैर गईं।

"सुमित्रा, कुछ पैसे जमा किये हो तो दे दो भई। गुरुबख़्श विलायत जा रहा है। उसका सब सामान बिक चुका है बस एक आलमारी ही बिकने को बाक़ी है।" यकायक उसके कानों में पति का स्वर गूंजा।

"कितने दे दूँ?"

"रुपये सौ एक दे दो... पचास मेरे पास हैं।"

"डेढ़ सौ रूपये में महंगी नहीं है क्या?"

"पूरे सात सौ पैंसठ रूपये में उसने शोरूम से दो साल पहले आलमारी ख़रीदी थी। हमे तो कौड़ियों के दाम मिल रही है। वो तो कह रहा था फ्री में ले जाओ मगर मुझे अच्छा नही लगा। आख़िर पैसा तो उसका भी लगा है।"

आज लगभग पच्चीस वर्ष हो गए हैं आलमारी को ख़रीदे। कितना कुछ बदल गया है इन पच्चीस वर्षों में। अब न तो उसके पति ही ज़िंदा हैं और न ही उनका वो दोस्त गुरुबख़्श। जिससे उन्होंने आलमारी ख़रीदी थी। बेचारा सारा सामान बेचकर जिस विमान से विलायत जा रहा था। किसी तकनीकी ख़राबी के चलते वह जहाज़ आकाश में ही फट गया। परिणामस्वरुप उसके कई टुकड़े अरब सागर में जा गिरे थे। सुमित्रा ने मन में विचारते हुए एक ठण्डी आह भरी। यकायक पागलों की तरह दरवाज़ा पीटने का स्वर वातावरण में गूंजा। फटाफट आलमारी बंद कर उसमे ताला करने के बाद सुमित्रा ने चाबी, साड़ी के पल्लू से बांध ली।

"क्या रे कल्लन, दरवाज़ा तोड़ ही डालेगा क्या?" दरवाज़ा खोलते ही सुमित्रा उस पर बरस पड़ी, "नाशपीटे हज़ार दफ़ा कहा है इस तरह दरवाज़ा न पीटा कर।"

"बुढ़िया छाती पे रखके ले जाएगी सब।" कल्लन नशे में बिफरते हुए बोला, "हमसे छिपाके आलमारी खोली जाती है रोज़! कितना धन रखा है इस लोहे के पिटारे में? कल को आग तो हम ही लगाएंगे तेरी लाश पर।"

"क्या आग लगाएगा रे कल्लन बेटा? जब हम मरेंगे तो तू कहीं नशे में धुत पड़ा होगा। ख़बर भी न होगी तुझे। पड़े-पड़े सड़ जाएगी माँ की लाश।"

कल्लन सुने के अनसुना करके नशे की हालत में लड़खड़ाता हुआ अपने कक्ष में चला गया तो सुमित्रा को कल्लन के भविष्य की चिंता सताने लगी।

'क्या होगा इस लड़के का? कल को कैसे खायेगा? हमेशा से ऐसा तो न था ये। ग़लती हमारी ही है, जो इसे बिगड़ जाने दिया।' अपने आप से ही बतियाते हुए सुमित्रा ने अतीत की वे कड़ियाँ जोड़ी, जो कल्लन को इन वर्तमान परिस्थितियों में पहुँचाने के लिए ख़तावार थीं।

"सुमित्रा, मैंने कितनी बार कहा है, तुम लड़के का पक्ष न लिया करो। लड़का हाथ से निकलता जा रहा है!" कानों में उनका स्वर गूंजा।

"क्यों क्या हुआ जी?"

"आज स्कूल गया तो पता लगा कल्लन महाराज कई दिनों से स्कूल नहीं जा रहे हैं। अपने आवारा दोस्तों के साथ सारा दिन मटरगस्ती किया करते हैं। सिनेमा देखते हैं। पिछले महीने से फ़ीस भी नहीं भरी है।"

"देखो जी बच्चा है प्यार से समझाओगे तो समझ जायेगा।"

"आज हमको मत रोकना सुमित्रा। आज हम कल्लन के प्राण निकाल कर ही छोड़ेंगे।"

उस रोज़ कल्लन को इतना पीटा गया। यदि सुमित्रा बीच में न पड़ती तो शायद कल्लन के प्राण ही चले जाते।

"अब मार ही डालियेगा क्या?" कल्लन को अपने पल्लू में छिपाते हुए सुमित्रा बोली।

"ज़रूरत पड़ी तो जान से भी मार डालेंगे।" उनके स्वर में आक्रोश था।

"मार ही डालना है तो पैदा क्यों किया था?" सुमित्रा ने पति के क्रोध को कुछ शांत करने की गरज से कहा।

"ऐसी औलाद से तो हम बेऔलाद अच्छे।" डण्डा ज़मीन पर पटक कर वे दूसरे कक्ष में जाकर रोने लगे। उस रोज़ उन्होंने भोजन भी नहीं छुआ।

उस रोज़ दर्द से रातभर सिसकता रहा था कल्लन। रातभर समझती रही थी सुमित्रा, "वैसे दिल के बुरे नहीं हैं तुम्हारे बाबुजी। काहे गुस्सा दिलाते हो उन्हें? क्यों नहीं कहना मानकर अपने बड़े भाई की तरह सही ढंग से पढाई करते।" आदि-आदि।

मगर मार खाने के कुछ दिन बाद फिर वही हाल। बाप ने भी हार मानकर पल्ला झाड़ लिया। पिटाई ने उसे ढीठ बना दिया और आवारा दोस्तों ने नशेड़ी।

आज पैंतीस-छत्तीस की उम्र में ही कल्लन साठ साल का बूढ़ा दिखाई देने लगा था। बिखरे हुए लंबे बाल। जिनमे आधे से ज़ियादा सफ़ेद थे। बढ़ी हुई दाढ़ी। नशे में लाल धंसी हुई आँखें। अस्त-व्यस्त बदबूदार मैले और फटे हुए कपडे। जिन्हें सुमित्रा ही सीती और धोती थी। लाख कहने और समझने पर ही वह कपडे बदलता था।

"अम्मा जी।" कहकर वो कक्ष में दाख़िल हुआ।

"कौन राघव?" सुमित्रा ने देखा, "आज बूढी माई की याद कैसे आई भइया?"

"वो अम्मा जी।" शेष शब्द संकोचवश राघव के मुख में ही रह गये थे।

"कहो-कहो!"

"हमने नया मकान ले लिया है। कल हवन है।"

"यहाँ ज़हर खाने तक को पैसे न हैं और तुमने नया मकान भी ले लिया।" हृदय में घुली कड़ुवाहट को होंठों पर लाते हुए सुमित्रा बोली।

"देखो अम्माजी हम फालतू बहस करने नहीं आये हैं। सीमा ने कहा था कि हवन के मौक़े पर बड़े बुजुर्गों का होना शुभ होता है। उनका आशीर्वाद ज़रूरी है। सो हम चले आये।"

"अब बड़े-बजुर्गों की याद आ रही है। उस वक्त कहाँ मर गई थी यह बहुरिया? जब कानाफूसी करके तुमको इस घर से दूर ले गई थी रे राघव!" सुमित्रा के सब्र का पैमाना छलक पड़ा।

"मुझे लगता है मैंने यहाँ आकर ग़लती की?" राघव वापस चल दिया।

"हाँ-हाँ हमसे मिलना भी अब ग़लती हो गया है। हमने ग़लतियाँ ही तो की हैं आज तक।" सुमित्रा राघव की तरफ़ पीठ करके बड़बड़ाने लगी, "पहली ग़लती तुझे जन्म दे के की। दूसरी ग़लती तुझे अपना पेट काटकर पढा-लिखा के की। तीसरी ग़लती तेरी शादी करके की। चौथी ग़लती...." वह वापिस राघव की ओर पलटी तो देखा कक्ष में कोई नहीं था। राघव कबका जा चुका था। कक्ष में शेष रह गया था, शून्य का कवच। जो पुनः उसके मस्तिष्क को जकड़ने लगा था।

ये वही राघव है जो छह-सात बरस पहले घर छोड़ के चला गया था। आख़िरी बार तब आया था। जब दूसरे बच्चे का नामकरण संस्कार था। आज से लगभग पांच बरस पहले। उस रोज़ भी वह न्यौता देने ही आया था। यादों की खुली खिड़की से सुमित्रा फिर अतीत के दिनों में झाँकने लगी।

"अम्माजी कल मुन्ने का नामकरण है। आपको ज़रूर आना है।" राघव ने बैठते हुए कहा। उसके हाथ में पानी का गिलास था।

"मिल गई फुरसत हमें न्यौता देने की!"

"क्या मतलब?"

"मुहल्ले भर को पहले ही सब ख़बर है और हमें आज बताया जा रहा है!"

"अम्मा आपको तो लड़ने का बहाना चाहिए। आपकी इसी आदत से तंग आकर हमने ये मकान छोड़ा।"

"वाह बेटा वाह! खूब चल रहा है बहू के कहने पर, और क्या-क्या सिखाया है तुम्हें बहुरानी ने।"

"माँ तुम भी सीमा के पीछे हाथ धोकर पड गई हो! छोटी-छोटी बातों को लेकर।"

"दो दिन न हुए उस कलमुंही को आये। जन्म देने वाली माँ को लड़ाकू बता रहे हो। शाबास इसलिए पैदा किया था तुमको! हे कल्लन के बापू, हमको भी अपने पास बुला लो।"

"देखो माँ! नामकरण में आना हो तो आ जाना वरना!" कहकर राघव उस दिन जो गया फिर आज ही आया था! पूरे पाँच साल बाद। इन पांच सालों में एक बार भी बूढ़ी माँ की याद न आई।

बाहर गली में कुत्तों का भौंकना सुनकर सुमित्रा की तन्द्रा टूटी। वह वर्तमान में आ खड़ी हुई। बाहर जाकर देखा तो कबाड़ी वाला दिखाई दिया। जिसे देखकर कुत्ते भौंक रहे थे। कुछेक बच्चे भी खेलते हुए दिख पड रहे थे। पड़ोस में ही तीन-चार औरतें गप्पें लड़ा रही थीं।

"कबाड़ी वाला ख़ाली बोतल, टीन-टपर, रद्दी SSS....।" ऊँचे स्वर में कबाड़ी ने इन पंक्तियों को दोहराया। बग़ल में पड़ा एक ईंट का टुकड़ा उठाकर उसने कुत्तों के झुंड के मध्य फेंक दिया। कुत्ते तितर-बितर हो कर भागे। पीछे-पीछे रेहड़ी पर साग-सब्ज़ी लिए कोई दूसरा भी गली में घुस आया। अब दूर से आती उसकी आवाज़ गली में गूंजने लगी थी, "ताज़ा सब्ज़ी ले लो। घिया-गोभी, टिण्डा-टमाटर, आलू-प्याज़ ले लो।"

"आओ न सुमित्रा बहन। सारा दिन घर में बैठी रहती हो! कभी हमारे साथ भी बैठा करो।" गप्पें हांकती हुई एक पड़ोसन बोली।

"क्या करूँ कहीं भी उठने-बैठने की इच्छा नहीं होती!" कहकर सुमित्रा उन औरतों के बीच

जा बैठी।

"राघव किसलिए आया था? कुछ उखड़ा-सा लग रहा था। हमने दुआ-सलाम की तो कोई जवाब नहीं दिया उसने! बड़ी जल्दी में था शायद।"

"नया मकान लिया है! कल हवन करवा रहा है। मुझे बुलाने आया था।" सुमित्रा ने भारी मन से कहा।

"ये तो ख़ुशी की बात है! कब लिया नया मकान राघव ने।"

"कौन-सा यहाँ रोज़ आता है वो, जो मैं उसके बारे में कुछ बता पाऊँ!" सुमित्रा की बात में हल्का चिड़चिड़ापन और राघव के प्रति क्रोध छलक रहा था, "जैसे वो तुम्हारे लिए अजनबी। वैसे ही वो मेरे लिए अजनबी। पूरे पांच-छह बरस बाद आया था।"

"हाय राम, क्या ज़माना आ गया है? सगा बेटा भी माँ की सुध-बुध नहीं लेता!" पड़ोसन ने ऐसा कहा तो सुमित्रा की रुलाई छूट पड़ी। वातावरण में दुःख और वेदना की लहर दौड़ गई।

"क्या करूँ जानकी बहन, मेरे तो भाग ही फूटे हैं! दुनिया-जहाँ में अकेली रह गई हूँ। सबसे अलग-थलग पड गई हूँ।"

"क्या हम नहीं जानते तुम्हारा दर्द, सुमित्रा बहन! जब तक भाईसाहब ज़िन्दा थे क्या रौनक रहती थी?" जानकी ने सुमित्रा की दुखती रग पर हाथ रखते हुए कहा, "और आज देखो, मरघट का-सा सन्नाटा छाया रहता है।"

"क्या जाओगी राघव के यहाँ हवन में?" दूसरी बोली।

"मैं तो उन लोगों के लिए मर चुकी हूँ।"

"फिर भी माँ होने के नाते तुम्हें जाना चाहिए।"

"देखूंगी। तबियत ठीक रही तो।" कहकर सुमित्रा ने बात टाल दी।

"अच्छा प्रिया भी नहीं आती-जाती यहाँ?" तीसरी बोली।

"जब बेटे ही पराये हो गए तो बेटी का आना-जाना क्या?"

"कितने बच्चे हैं उसके?"

"दो बेटियाँ हैं उसकी। सुना है फिर पैर भारी है उसका।"

"अच्छा।" जानकी ने कहा, "कोई सन्देश आया था क्या?"

"हाँ दो हफ़्ते पहले जमाई जी आये थे तो बेटी का हाल-चाल मालूम चला।"

"चलो इस बार लड़का हो जाये बेचारी का।"

"क्या होगा बहन बेटा पैदा करके भी।" सुमित्रा के स्वर में कड़वाहट थी, "हमें ही देख लो संतान का कितना सुख मिल रहा है। दो बेटे हैं। एक शादी होते ही बहू के साथ निकल गया तो दूसरा ऐसा बिगड़ा की पक्का नशेड़ी हो गया। कमाना तो दूर उल्टा घर के बर्तन भांडे भी बेच दिए हैं उसने। बोझ बन गया है मुझ पर। कल को मैं गुज़र गई तो भूखों मरेगा।"

"अपनी-अपनी क़िस्मत है। हमारे बच्चे तो अभी ठीक रहते हैं पर आगे चलके पता नहीं?" जानकी ने कहा।

"ऐ बुढ़िया कहाँ मर गई। बुढ़िया।" घर के भीतर से कल्लन का तेज़ स्वर सुनाई पड़ा।

"कैसे पुकार रहा है?" जानकी ने कहा।

"शायद नशा टूट गया है और भूख लग आई है कमबख्त को।" सुमित्रा ने उठते हुए कहा।

"बताओ, माँ कहकर नहीं पुकार सकता क्या?" जानकी बोली।

"क्या कहे बहन, अपने कर्म हैं। शायद पिछले जन्म का कुछ भुगतना रह गया है।" चलते-चलते सुमित्रा बोली और घर में प्रविष्ट हो गई।

"बुढ़िया, कहाँ मर गई थी? कबसे गला फाड़े चिल्ला रहा हूँ।" भीतर खड़ा कल्लन माँ को देखते ही बरस पड़ा, "सारा दिन गप्पों में गुज़ार देती है! खाना क्या तेरा बाप बनाएगा? मुझे ज़ोरों की भूख लगी है।"

"बेटा तुम्हारी नौकर नहीं हूँ मैं, समझे। आँखें किसी और को दिखाना।" सुमित्रा ने भी रौद्र रूप धारण कर लिया, "मुझे ही नोचकर खा ले तो चैन पड़ जायेगा। बहुत कमाकर लाया है न बेटा, जो पकाती फिरूँ! अभी ज़िन्दा हूँ तो खा रहे हो। कल को मर जाऊंगी तो खाना अपनी हड्डियाँ।"

"ज़्यादा मत बोल बुढ़िया, खाना पका।" कल्लन ने रौब झाड़ते हुए कहा।

"खिचड़ी पकी हुई है। पीपे के अंदर पतीले में रखी है।"

"खाना भी अब हमारी नज़रों से छुपा कर रखा जाने लगा है!"

"अच्छा तेरी नज़रों के सामने रख दूँ ताकि घर में दो-चार बर्तन जो बचे हैं, तेरे नशे की भेंट चढ़ जाएँ।"

"बुढ़िया, फालतू बकवास मतकर। चुपचाप खाना मेरे कमरे में भिजवा दे।" कहकर कल्लन बरामदे में लगे लकड़ी के जीने से छत पर टीन की चादर से बनाये अपने कमरे में घुस गया। सामान के नाम पर एक टूटी हुई चटाई। जिसके तिनके अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए जूझ रहे थे। दीवार पर टंगे मैले-कुचैले कपडे ही थे।

ज़ीना चढ़कर कल्लन को खाना दे चुकने के बाद, सुमित्रा पतीले में ही खाना खाने लगी। कुछ पुरानी यादें पुनः तैरने लगीं। वह खाते-खाते खिलखिलाने लगती। खाना खाते हुए उसे पति के स्वर सुनाई देने लगे।

"सुमित्रा हज़ार दफ़ा कहा है। पतीले में मत खाया करो।"

"क्या फ़र्क़ पड़ता है जी?"

"कोई देख लेगा तो क्या कहेगा? कैसे गंवार और असभ्य लोग हैं?"

"ये असभ्य क्या होता है?"

"तुम्हारी ही तरह होते हैं। जिन्हें खाने की तमीज़ नहीं कि खाना थाली में खाया जाता है, न कि पतीली-कढ़ाई में।"

सुमित्रा तेज़-तेज़ हंसने लगी। उसे पति के साथ नोक-झोक अच्छी लगती थी।

"क्या पागल हो गई है बुढ़िया? ऊपरी मंज़िल पर भी तेरे ठहाके गूंज रहे हैं! दो मिनट चैन से खाने भी नहीं देती किसी को!" खाना खा चुकने के बाद ज़ीना उतरते हुए कल्लन चींखा और ख़ाली थाली और गिलास सुमित्रा के सामने फेंक दिए।

"कुछ नहीं, तुम्हारे बाबूजी की याद आ गई।" सुमित्रा यादों के खुशनुमा खुमार में मुस्कुराते हुए बोली।

"नाम मत लो उस बूढ़े का। उसी की वजह से हम इस नरक में पड़े हैं।" कल्लन के सामने पिता का चेहरा घूम गया, "अच्छा हुआ मर गया, नहीं तो अब तक हम उसका गला घोट देते।"

"ये जो दो दाने अन्न के पेट में जा रहे हैं। उन्हीं की पेंशन की बदौलत खा रहे हो। उन्होंने तो

जितना हो सका तेरा भला ही किया। ये नरक तो तूने अपने वास्ते खुद ही चुना है।"

"क्या खाक भला किया है? हर वक़्त मारते रहते थे। पूरे जल्लाद थे जल्लाद!"

"तुम्हारे भले के लिए ही पीटा था उन्होंने। अच्छे से पढ़-लिख जाते तो आज ये हाल न होता तुम्हारा।"

"राघव ने कौन-सा तीर मार लिया?"

"कुछ भी है अपना पेट तो पाल रहा है। उसके बाल-बच्चे भूखे तो नहीं मर रहे।" सुमित्रा ने पानी पीते हुए कहा, "अब तो नया मकान भी ले लिया है उसने। चार पैसे बचा ही रहा है।"

"बकवास मत कर। कुछ और खिचड़ी बची है तो दे दे।"

"ले पतीले में ही खा ले।" कहकर सुमित्रा ने पतीला कल्लन के सम्मुख रख दिया। कल्लन किसी जन्म-जन्म के भूखे की तरह दोनों हाथों से खिचड़ी मुंह में ठूसने लगा।

"मैं बाहर जा रहा हूँ।" पेट भर खा चुकने के बाद डकार लेते हुए कल्लन बोला।

जब कल्लन चला गया तो सुमित्रा ने दरवाज़ा बंद करके पुनः आलमारी के कपाट खोले।इस बार जेवरों पर उसकी दृष्टि गई तो कुछ सुहानी यादें और ताज़ा हो उठीं।

"क्या सुमित्रा बार-बार जेवरों को निहारते तुम्हारा मन नहीं अघाता?" पति का स्वर सुमित्रा के कानों में गूंजा।

"ये जेवर मेरी अपनी बहुओं के लिए हैं। जब राघव और कल्लन की शादी होगी तो उनकी बहुएँ पहनेगी।"

"बहुएँ जब पहनेंगी तो पहनेगी। फ़िलहाल इन सारे जेवरों को एक बार फिर से तो पहनकर दिखाओ। सुहागरात के दिन ग़ज़ब की सुन्दर लग रहीं थी तुम इन जेवरों में।"

"छोड़ो जी, इतने वर्षों बाद।"

"एक बार फिर से मेरे लिए न पहनोगी।"

"अच्छा!" कहकर वह पुनः दुल्हन के लिबास में सजने लगी और जब पति के सम्मुख पहुंची तो।

"आह! क्या नाम दूँ तुम्हें सुमित्रा?" बे रोमांटिक होकर बोले, "साक्षात् महाकवि कालिदास की प्रेरणा 'शकुन्तला' लग रही हो तुम! या फिर तुम्हें स्वर्ग से उतरी, रम्भा, उर्वशी, मेनका जैसी किसी परी के नाम से अलंकृत करूँ।" वे संस्कृत के भी प्रकाण्ड विद्वान थे। अक्सर सुमित्रा को ऐसी उपमाएं दिया करते थे, लेकिन ठेठ देहाती सुमित्रा के सिर से सारी बातें निकल जाती थी। उसे इतना ही पता रहता था कि वे उसे अपनी कल्पनाओं में ज़मीन से उठाकर फलक पर बैठा रहे हैं।

"हटो जी, मुझको ऐसे न छेड़ो, लाज आती है।" अक्सर परियों से अपनी उपमाएँ सुनकर सुमित्रा शरमा जाती थी।

"अब भी लाज आती है!" वे नशीली आँखों से एकटक हो कर सुमित्रा को देखते।

"धत!" सुमित्रा ने घूंघट में अपना मुखड़ा छिपा लेती।

"सुमित्रा तुमने दो प्यारे-प्यारे लड़के तो दे दिए। अब एक नटखट-सी गुड़िया भी दे दो हमें।" अपनी इच्छा का इज़हार करते हुए उन्होंने घूंघट हटाते हुए कहा।

घूंघट हटते ही सुमित्रा ने दोनों हाथों से अपना चेहरा छिपा लिया। जैसे कि वह सचमुच नई नवेली दुल्हन हो।

"क्या हुआ?"

"हाय दैया री! लाज लागत है। पहले बत्ती बंद करो।" बत्ती का स्विच ऑफ़ होते ही वह पुनः वास्तविकता में लौट आई।

अजीब-सी अनुभूति के साथ वो गहनों को हाथ से स्पर्श करने लगी। यकायक उसके हाथ रुक गए। जब बाली के जोड़े में से एक बाली गुम देखकर उसे वह घटना याद हो आई जो राघव के घर छोड़ने का कारण बनी थी। आये दिन छोटी-मोती नोक-झोंक तो होती ही रहती थी मगर उस दिन।

"बहू ये क्या? कान में सिर्फ़ एक बाली?"

"माँ जी दूसरी बाली गुम हो गई है।"

"हाय राम! दो दिन गहने डाले नहीं हुए, और खोने भी शुरू कर दिए... मैंने इतने वर्षों से सम्भल के रखे थे।"

"जान-बूझकर तो नहीं खोये माँ जी।"

"बहू तू इतनी नासमझ तो नहीं, जो जान-बूझकर खोयेगी! मुझसे उलझने के तुझे नए-नए बहाने जो सूझते हैं।"

"माँ!" राघव ने बीच में हस्तक्षेप करते हुए कहा, "कह तो रही है जान-बूझकर नहीं खोया। फिर क्यों बहस कर रही हो?"

"अच्छा मैं बहस कर रही हूँ। वाह बेटा बहू को डाँटने की बजाए उल्टा मुझे दोष दे रहा है।"

"मैं तंग आ चुका हूँ रोज़-रोज़ की किचकिच से।"

"तो ठीक है तुम लोग अपना जुगाड़ कहीं और कर लो, मगर घर ख़ाली करने से पहले मेरे गहने आज, अभी और इसी वक़्त मुझे दे दो।"

"हाँ!" बहू ने मुंह फुलाते हुए कहा, "वैसे भी ये दो कौड़ी के गहने पहनना किसे पसन्द है।"

"तुम्हारे लिए तो मैं भी दो कौड़ी की हूँ। जब जन्मा हुआ ही पराया हो गया तो तुझसे क्या?"

गुस्से में माँ द्वारा कहे गए दो वचन भी सहन न कर सके राघव और उसके बाल-बच्चे। दो दिन में ही नए मकान में शिफ्ट कर गए थे वे। मोहमाया के सब बंधन त्यागकर। सुमित्रा का मन वितृष्णा से भर उठा। वह आलमारी के कपाट बंद करना चाहती थी कि उसके हाथ से टकरा कर कोई चीज़ फ़र्श पर जा गिरी। उसने देखा तो दवा की शीशी थी। जो फ़र्श पर गिरकर चूर-चूर हो गई थी।

ये शीशी पिछले दस वर्षों से आलमारी में पड़ी थी। दिल के दौरे के लिए आख़िरी बार इस्तेमाल की गई थी उसके पति द्वारा। काफी तड़पे थे उसके पति दूसरे हार्ट अटैक के वक़्त। बड़ी मुश्किल से सुमित्रा ने राघव व कल्लन को आवाज़ देकर बुलाया था। सुमित्रा तो अपनी बेटी प्रिया के साथ बस रोये जा रही थी।

"क्या हुआ माँ?" राघव ने पूछा मगर पलंग पर बाबूजी को तड़पता देख, सारी कहानी वह समझ गया था।

"कल्लन फटाफट आलमारी में से दवा की शीशी ले आओ।" राघव ने चिल्लाकर कहा ही था।

"स्वामी!" कल्लन ने आलमारी के कपाट खोले ही थे कि माँ की हृदय विदारक चींख ने उसे दहला दिया। कल्लन ने मुड़ कर देखा तो बाबूजी का मृत शरीर पलंग पर शांत पड़ा था और रोना-धोना मच गया।

काँच के टुकड़े सुमित्रा ने बड़े सलीके से संभाल के उठाये। हर टुकड़े में उसे अपने पति की शक्ल दिखाई दी। मुस्कराते हुए जैसे वह हमेशा रहते थे।

रात काफ़ी चढ़ चुकी थी। सुमित्रा अपनी स्मृति में बालपन से अब तक के समस्त चित्रों को देखने लगी। न जाने उसे कब आँख लग गई? सोते समय आज उसके चेहरे पर अजीब-सा संतोष था।

अगले दिन मुहल्ले में कोहराम मचा हुआ था। पूरे मुहल्ले भर के लोग बुढ़िया के घर के आगे जमा थे। ख़ून से लथपथ उसका शव खाट पर पड़ा था। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे देर रात गहरी निंद्रा में उसका किसी ने तेज़ धारदार हथियार से गला रेत दिया हो। कारण शायद चोरी था क्योंकि आलमारी के कपाट खुले हुए थे और उसमें से सारा क़ीमती सामान ग़याब था। सभी को अन्देशा था कि ये काम नशेड़ी कल्लन का ही हो सकता है क्योंकि उसका कहीं अता-पता नहीं था।

●●●

नस्लें

"अरे भाई ये किसकी लाश है? हमारे बरामदे में क्यों रख रहे हो? हामिदा रोको इन्हें!" बुड्ढ़े गुलमुहम्मद ने अनजान बनते हुए कहा। हालाँकि कल रात को तार (Telegram) मिलने के बाद, उसे सब कुछ ज्ञात हो गया था। तीन शब्द रातभर हथौड़े की भांति उसके मस्तिष्क पर प्रहार कर, उसे लहूलुहान करते रहे "SALIM IS DEAD ..."

'सलीम मर गया...' रातभर यही तीन शब्द गूंजते रहे कानों में, मस्तिष्क में और वातावरण में। सलीम का चेहरा रातभर उभरता और मिटता रहा गुलमुहम्मद के ज़ेहन में। आँखें सूजकर पथरा गईं थीं और चेहरा भावशून्य हो गया था। दिमाग़ देर तक पुरानी यादों के मरूस्थल में भटकता रहा....

०००

"हमीदा, मौसमे-बहार में जब जाड़ों की बर्फ़ पिघलकर दरिया हो जाती है तो घाटी में जगह-जगह गुलों के गलीचे से बिछ जाते हैं और दिल कह उठता है—गर फ़िरदौस बारूए ज़मीं अस्त। हमीं अस्तो, हमीं अस्तो, हमीं अस्त। फ़िज़ां में शा'इरों की नज़्में, ग़ज़लें, रुबाइयाँ अंगड़ाई लेने लगती हैं। हाय, क्या दिलकश समां होता है वो!" ठण्ड में ठिठुरते बुड्ढ़े गुलमुहम्मद ने बड़े रुमानी अंदाज़ में कहा और फूंक मारकर मन्द पड़तीआँच को तेज़ करने लगा। कुछ चिंगारियाँ हवा में तैर गईं। आग दुबारा सुलग उठी।

"और तुम मेरे बालों में बादाम, खोबानी और गुलाब के फूल सजाते थे और गुललाला, नरगिश की तारीफ़ों के नग़्में छेड़ा करते थे। फिर हम साजे-दिलरुबा के तारों की मौसिक़ी में खो

जाया करते थे, हाय! अब तो कमबख़्त यादें ही रह गईं हैं!" अतीत में डूबी हमीदा वर्तमान के यथार्थ पर अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए बोली, "अब तो सिलवटें उभर आईं हैं और सारे बाल कैसे सिन की तरह सफ़ेद हो गए हैं।" कहते हुए हमीदा आँच पर अपने ठण्डे हाथ सेकने लगी।

"रजाई ऊपर खींच जल जायेगी।" गुलमुहम्मद ने चारपाई से नीचे लटक रही रजाई को देखकर कहा। आग दोनों चारपाइयों के मध्य मिटटी के फ़र्श पर रखी अंगीठी में सुलग रही थी। जिससे पूरे कमरे में गरमी और मद्धम प्रकाश फैल गया था। इसके अलावा काम रौशनी पर एक चिराग़ जल रहा था। बुड्ढा गुलमुहम्मद भी अपनी चारपाई पर रजाई के अंदर दुबक गया और करवट लेकर बोला, "बेगम क्यों तुमने माज़ी का हंसी ख़्वाब तोड़ डाला? क्यों याद दिला रही हो, इस बिगड़े हुए सूरते-हाल की? आज भी रातों को उठकर सहम जाता हूँ—जब अमेरिकी धमाकों की गूंज सुनाई देती है।" कहते हुए गुलमुहम्मद के बदन पर झुरझुरी-सी दौड़ गई। रजाई के भीतर भी उसे कंपकंपी महसूस होने लगी। उसी कम्पन्न को महसूस करते हुए वह सहमे स्वर में बोला, "ऐसी ही गूंज अस्सी के ज़माने में शुराबी (रशियन) फ़ौजों के गोला-बारूद की भी सुनाई देती थी।"

"जंग तो कबकी ख़त्म हो गई नज़र के अब्बा!" कहने के साथ ही हमीदा बानू रो पड़ी। उसे अपने जवान बेटे की याद हो आई। जो हाल ही में, तालिबानों की तरफ़ से लड़ते हुए अमेरिकी गोलाबारी में मारा गया था।

"हाय! कितना प्यारा बच्चा था नज़र मुहम्मद। कहता था, अब्बू अपने कन्धों पर बिठाकर तुम्हें मक्का-मदीना ले जाऊंगा। हज कराऊंगा अब्बू!..." और गुलमुहम्मद भी बिलख उठा।

"बुरा हो इन तालिबानी, पाकिस्तानी और अमेरिकियों का। एक माँ की बददुआ है —कभी भला न होगा इन मरदूदों का। इनके साथ ही दफ़्न हो जायेंगे, इनके बीज। बेऔलाद हो जाएँ ये सब, ताकि सरज़मीने अफ़ग़ान में फिर कोई जवान बच्चा न खोये।" हामिदा के स्वर में आक्रोश था। जिससे अग्नि की मंद लौ में उसका झुर्रीदार चेहरा और भी डरावना हो उठा था।

"ख़ुदा के वास्ते चुप हो जा हमीदा। चिराग़ बुझाकर सो जा। क्यों अपनी सेहत ख़राब कर रही है?" गुलमुहम्मद ने समीप ही जल रही चिराग़ की बीमार रौशनी को फूंक मारकर बुझा दिया। कक्ष में लगभग अँधेरा हो चला था, मगर हमीदा की सिसकियाँ साफ़ सुनाई दे रही थी।

"क्या तुम्हें नींद आएगी नज़र के अब्बू?"

"कौन सो सकता है? सारा बुढ़ापा ही ख़राब हो गया। कमबख़्त, लादेन भी अब तक पकड़ा नहीं गया है! कोई कहता है, तोरा-बोरा की पहाड़ियों में छिपा बैठा है! तो कोई कहता है, पाकिस्तान भाग गया है! और चार रोज़ पहले नूरा बता रहा था कि वह मारा जा चुका है।"

"ख़ुदा करे ऐसा ही हो! सीधे-साधे पठानों को जेहाद का पाठ पढ़ाकर वक़्त से पहले ही मौत के हवाले कर दिया मरदूद ने।" हमीदा के स्वर में ऐसी कड़वाहट घुल गई जैसे लादेन सामने आ खड़ा हुआ हो।

"कल सलीम आ रहा है, कश्मीर जाने से पहले वह हमसे मिलना चाहता है।" गुलमुहम्मद ने बात का रुख़ बदलते हुए कहा।

"इस लड़के का भी दिमाग़ ख़राब हुआ है! क्यों मौत के मुंह में जा रहा है?" हमीदा ने सलीम के प्रति गुस्सा व्यक्त किया।

"अगर ख़ान मेरी बात मानकर, अपनी बेटी नाज़नीन का हाथ, सलीम के हाथ में दे देता! तो मैं इस लड़के को कभी जेहाद के रास्ते पर न चलने देता।" तकिये पर गर्दन को ताव देते हुए गुलमुहम्मद बोला।

"कितना प्यार था दोनों में। बचपन से ही मेरा सलीम बेइतिहाँ चाहता था नाज़नीन को," कहते हुए हामिद को दोनों का बचपन याद आ गया, "लेकिन हाय री क़िस्मत! बहुत रोया था सलीम, जिस रोज़ नाज़नीन का निकाह कहीं और हो गया।" कहते-कहते हमीदा ने एक ठण्डी आह भरी।

"यहाँ के जेहादियों के सरगना करीमुल्लाह का हुक्म है कि कश्मीर में हिन्दुस्तानी फौजें वहां के मुसलमानों पर ज़ुल्मों-सितम ढा रही हैं। इसलिए हफ्तेभर में पचास जेहादियों का जत्था, पाकिस्तान के रास्ते ख़ुफ़िया तरीक़े से कश्मीर पहुंचेगा। उसमे अपने सलीम का नाम भी है!" कहकर गुलमुहम्मद ने तकिया सीधा किया।

"आपको कैसे ख़बर हुई?" हमीदा चौंक पड़ी।

"कल नूरा ने सलीम का पैग़ाम दिया था।"

"और ये बात तुमने अब तक छिपाई, आज बता रहे हो सोते समय!"

"भूल गया था भई, बुढ़ापे का असर जो ठहरा।"

"तो अब क्यों कर याद आया?"

"दरअस्ल मैं सोच रहा था कि बामियान से बशीर भाईजान के दो-तीन बुलावे आ चुके हैं। कश्मीर जाने से पहले, क्यों न सलीम हमें वहां छोड़ आये?" गुलमुहम्मद ने बात का खुलासा किया।

"बामियान में क्या धरा है अब? बुद्ध के पाक बुत को तो तालिबानों ने कबका तोड़ दिया है। पहले सैलानियों के आने से उन लोगों की कुछ कमाई होती थी, अब तो वो भी चौपट हो गई होगी?"

"हाय! कितना अज़ीम, पाक बुत था। कई मर्तबा देखकर भी दिल नहीं भरता था उससे। बामियान के पहाड़ों की रौनक था। सैलानियों का ताँता लगा रहता था, पूरे सालभर वहां। सारी दुनिया-जहान के लोग आते थे।" कहते-कहते बुड्ढ़े गुलमुहम्मद की आँखों के आगे भगवान बुद्ध की विशालकाय प्रतिमा को देखने आये देशी-विदेशी पर्यटक घूम उठे। फिर यकायक तोप की आवाज़ें। विशाल बुत की ओर बढ़ते तालिबानी सिपाही। धवस्त होते उस विशालकाय मूर्ति के अवशेष। सब नज़ारे एक-के-बाद-एक गुलमुहम्मद के स्मृति-पटल पर चित्रपट की भांति घूमने लगे। वह चीख उठा, "कमबख़्त तालिबानियों को बर्दाश्त नहीं हुआ! मजहबी जुनून में, तबाह और बर्बाद कर दिया सब कुछ। अब कभी न बन सकेगी वैसी अज़ीम-पाक बुत! वो दुनिया का आठवां अजूबा था। न-जाने तालिबानों को क्या नफ़रत थी मुहब्बत का पैग़ाम देती उस पाक-निशानी से। उनकी इस करतूत सेअफ़ग़ानी हिन्दू भाइयों के आगे पठानों का सर शर्म से नीचा हो गया!" बेहद अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए बुड्ढ़े गुलमुहम्मद ने कहा।

"अब चारों तरफ़ सिवाए बर्बादी और खंडहरों के अफ़ग़ानिस्तान में बचा ही क्या है?" हमीदा ने गुल के सुर-से-सुर मिलाया, "सब कुछ ख़त्म हो गया नज़र के अब्बा।"

"हम उस बुत की हिफ़ाज़त न कर सके। इसलिए ये खुदा का क़हर नाज़िल: हुआ है हम पर।" बुड्ढ़े गुलमुहम्मद ने आक्रोश व्यक्त किया।

"मैं नहीं जाऊंगी बामियान। टूटा -फुटा, तबाह-हाल, आख़िर जैसा भी है मिटटी का ये घर, कम-से-कम अपना तो है। यहाँ मेरे बच्चे की यादें जुड़ीं हैं, एक दिन यहीं सोना है मुझे, अपने नज़र की क़ब्र के पास।"

"खुदा के वास्ते, मत रो हमीदा।"

रातभर यूँ ही रह-रहकर पुरानी यादें हरी होती रहीं। इन्हीं रोज़मर्रा की बातों के सहारे जीवन के बचे-खुचे शेष दिन काट रहे थे, दोनों बुड्ढे। घड़ीभर को उन्हें कभी नींद आ जाये, तो आ जाये, वरना एक ज़माना गुज़र चुका था, उन्हें चैन से सोये। अलबत्ता, जो आग पहले सुलग रही थी। धीरे-धीरे अब वह शान्त हो चली थी।

०००

"अमेरिका और पाकिस्तान, दुनिया से अगर ये दोनों मुल्क मिट जाएँ, तो दहशतगर्दी का नामोनिशां तक बाक़ी न बचे।" कहने के साथ ही सलीम ने आकाश में फ़ायर किया और एक परिन्दा ज़मीन पर गिरकर क्षणभर को तड़पा फिर शांत हो गया। रिवॉल्वर के मुहाने से धुआँ निकल रहा था। जिसे फूंकने के बाद सलीम ने रिवॉल्वर को चूमा और चमड़े की जाकिट की जेब में छिपा लिया।

"क्यों आते ही बेज़ुबान परिन्दों पर अपना ग़ुस्सा निकाल रहे हो सलीम? हम सुबह से ही तुम्हारा इन्तिज़ार कर रहे थे। अब आये हो?" बुड्ढे गुलमुहम्मद ने हुक्का गुड़गुड़ाते हुए कहा। दोनों घर के प्रांगण में चारपाइयों पर बैठे थे।

"कुछ नहीं, ऐसे ही करीमुल्लाह के साथ मीटिंग में फंस गया था।" सलीम ने मैगज़ीन के पन्ने उलटते हुए कहा।

"छोड़ दे बेटा हथियार। ये मौत का कारोबार? करीमुल्लाह तो पाकिस्तानी है, वह अपनी नस्लों को तो कब का तबाह कर चुके हैं। अब हमारी नस्लों को तबाह करना चाहते हैं। वैसे भी गोला-बारूद किसी मसले को हल नहीं करते, बल्कि हालात को और पेचीदा बना देते हैं!"

"ताई, अभी तक चाय लेकर नहीं आई!" सलीम ने जैसे गुलमुहम्मद की बात को अनसुना करते हुए भीतर दरवाज़े पर निगाह गढ़ाते हुए कहा।

"तुमसे तो बातें करना भी फ़िज़ूल है।" हुक्का गुड़गुड़ाते हुए बुड्ढा गुलमुहम्मद बड़बड़ाया।

"जानता हूँ ताया (बड़े अब्बू), आप क्या कहना चाहते हैं? मगर ये बात इन कुत्तों से जाकर कहो, जो सैकड़ों लोगों के मौत के परवाने पर दस्तख़त करते हैं! हुक्म चलाते हैं और मैगज़ीनों के ऊपर जिनकी तस्वीरें छपती हैं ... अम्न का फ़रिश्ता कहा जाता है, इन कमीनों को!" कहते हुए सलीम ने पत्रिका का मुख्य पृष्ठ गुलमुहम्मद को दिखाया। जिस पर तत्कालीन अमेरिकी और पाकिस्तानी हुक्मरानों के फोटो छपे हुए थे। उनके ठीक नीचे विश्वविख्यात आतंकवादी ओसामा-बिन-लादेन का मुस्कुराता हुआ फोटो भी छपा था। "अगर ये तीनों मेरे हाथ आ जाएँ, तो इनके सैकड़ों टुकड़े काटकर इनकी बोटियाँ कुत्ते-बिल्लियों को खिला दूँ।" और आवेश में सलीम मैगज़ीन को फाड़ता चला गया। उसके हाथ तब रुके जब फटे हुए काग़ज़ के टुकड़े हवा में लहरा उठे। सारा बरामदा काग़ज़ के कचरे से भर उठा।

"ओफ्फो, ये क्या हो रहा है? अभी सारा बरामदा साफ़ किया था, फिर कूड़ा कर दिया।" भीतर से पीतल के बड़े गिलासों में चाय लिए हुए, बाहर आई हमीदा ने काग़ज़ के बिखरे टुकड़ों को देखते हुए कहा।

"ला ताई, जल्दी पिला चाय, ठण्ड लग रही है।" कहते हुए सलीम ने आप ही दो गिलास उठा लिए। एक ताया के हाथ में थमाते हुए वह बोला, "इससे पहले ताई का ग़ुस्सा ठण्डा हो, हम गरमागरम चाय पी लेते हैं ताया।"

"सलीम भूल गया, कैसे चिमटे से पिटा करता था बचपन में, जब नज़र के साथ, तू शरारत करता था।" कहते हुए हमीदा भावुक-सी हो उठी। उसे नज़र मुहम्मद की याद हो आई।

"माँ के हाथों की मार और दुलार कौन भूल सकता है ताई। अम्मी के गुज़र जाने के बाद तूने ही तो मुझे पाला है।" सलीम ने मौक़े की नज़ाकत को भांपते हुए कहा।

"तभी तू मेरी हर बात मानता है। इसलिए तू कश्मीर जा रहा है।" हामिद ने माँ की तरह पुत्र को डाँटा।

"हमीदा, तू ही समझा इस नालायक को, मेरी तो कुछ सुनता ही नहीं है।" चाय के घूंट पीकर गुलमुहम्मद बोला, "तू अपनी ममता का वास्ता देकर रोक ले इसे।"

"ताया आप भी बस, कमाल हैं!" कहकर सलीम भी चाय पीने लगा।

"बेटे, तू तो जानता ही है, नज़र के चले जाने के बाद, हम कितने तनहा, कितने खोखले हो गए हैं। रात करवटों और पुरानी यादों के सहारे कटती है! अब कोई नहीं, जो हम बुड्ढों की आँखों से बहते हुए आंसू रोके! बेटे, सलीम अपने ताई-ताया पर रहम खा। मैं अपना दूसरा बीटा कुर्बान नहीं कर सकती!" हमीदा लगभग रो पड़ी।

"ताई मैं चाहूँ भी, तो रुक नहीं सकता।" कहते हुए सलीम ने हमीदा के आंसू पोछे, "अगर कश्मीर जाने से मना करता हूँ, तो वो पाकिस्तानी (करीमुल्लाह) मुझे मरवा डालेगा! इन कट्टरपंथियों के बहकावे में आकर जेहादी बनना तो आसान है, मगर जेहादी का ठप्पा लगने के बाद हमें आज़ादी तभी मिलती है, जब मौत आकर हमारी सांसों का सिलसिला तोड़ दे।" सलीम के स्वर में विवशतापूर्ण आक्रोश था, "मुझे तो ये भी नहीं मालूम, जिस गोली पर मेरा नाम लिखा है किसी दोस्त की होगी या दुश्मन की?"

"या खुदा, अपने बन्दों को नेक राह दे। बेटा, तू छोड़ दे ये सब, उस पाकिस्तानी को मैं समझा दूंगा। क्या हमारे आंसू देखकर भी उस करिमुल्लाह का दिल नहीं पिघलेगा?" गुलमुहम्मद के स्वर में याचना और आँखों में नमी थी।

"ताया, पत्थर अगर पिघलने लगे, तो फिर उसे पत्थर कौन कहे? माँ-बहनों की चीखों से बर्फ़ के पहाड़ों में तो दरारें पड़ सकती हैं मगर उस संगदिल के कानों में नहीं। इंसानियत के नाम पर तमाचा है करीमुल्लाह। हैवान से भी बदतर है। जानते हो ताया, अपने सगे भाइयों और बेटों के साथ क्या किया उसने? मुज़फ़्फ़राबाद में सरेआम गोलियों से छलनी कर दिया उन्हें!" कहते हुए सलीम के होंठ सख़्ती से भिंच गए और लहू उतर आया उसकी आँखों में। करीमुल्लाह का चेहरा याद आते ही उसने हिक़ारत से एक ओर थूक दिया।

"या अल्लाह! इतने संगदिल इंसान भी होते हैं दुनिया में।" हमीदा हैरान थी।

"ताई, उनका कसूर इतना था कि उन्होंने जेहाद में शामिल होने से इन्कार कर दिया था," सलीम के स्वर में वही बेरुख़ी थी, "उसके लिए रिश्ते-नाते, जज़्बात कोई मायने नहीं रखते! बस, जेहाद का भूत सवार है उसके सर पर, ताई दूसरा औरंगज़ेब है वो!"

"खुदा मारने वालों की रूह को सुकून दे।" गुलमुहम्मद ने मृतकों के लिए दुआ की, "लेकिन बेटे, जिसे तुम जेहाद कह रहे हो, एक फ़रेब है, पाकिस्तान इसके ज़रिये कश्मीर को हड़पने के मंसूबे पाल रहा है। इससे अफ़ग़ानियों को क्या फ़ायदा?" गुलमुहम्मद ने चाय का ख़ाली गिलास नीचे रखते हुए कहा।

"ये बात तो मैं भी जानता हूँ ताया, कश्मीर में जेहाद बेमानी है।" सलीम ने गुलमुहम्मद से सहमती जताई।

"क्या तुम जानते हो, हिंदुस्तान का मुसलमान कितने बेहतर हालात में जी रहा है? ये बात जाकर गुलाम मुहम्मद खान से पूछो, जो पिछले हफ़्ते ही हिंदुस्तान से लौटा है, पूरे बारह साल बाद!"

"क्या ख़ान अंकल लौट आये?"

"हाँ, उन्होंने ही मुझे बताया—हिंदुस्तानी मुसलमान दुनिया का सबसे खुशकिस्मत मुसलमान है, और सन सैंतालीस (1947) के बटवारे के बाद जो पाकिस्तान में रह गए या मुहाजिर बनकर पाकिस्तान गए, उनके भाग ही फूट गए! आज तक अपनाये नहीं गए वो लोग, जो पिछले पचास सैलून से वहां रह रहे हैं। फिर तुम्हीं सोचो, क्या मुश्तक़बिल होगा, कश्मीरियों का पाकिस्तान में? मैं मानता हूँ कि सभी पाकिस्तानी ख़राब नहीं हैं। वहाँ भी उदारवादी, तरक़्क़ीपसंद और प्रगतिशील लोग बहुतायत में मिल जायेंगे। मगर वहां के चन्द मुट्ठीभर कठमुल्लाओं और रहनुमाओं ने जो माहौल तैयार किया है, बड़ा ही ख़ौफ़नाक है। आये दिन वहां, शिया-सुन्नियों के मध्य खूनी मुठभेड़ें होती रहती हैं। बच्चा-बच्चा क़र्ज़ के बोझ में डूबा है। तालीम के नाम पर तमाचा मारा है पाकिस्तानी हुक्मरानों ने और अपनी सियासी रोटियाँ सेकी हैं। अपनी फ़िज़ां में घोला हुआ ज़हर और मुल्कों में भी फैला रहे हैं आई०एस०आई० के पिट्ठू। अपनी नस्लों को, वो आज आसानी से तालिबानी तो बना सकते हैं मगर मुल्क की तरक़्क़ी के वास्ते, कल को डॉक्टर-इंजीनियर या साइंसदाँ पैदा नहीं कर सकते? मजहब की आड़ में पैदा हुए पाकिस्तान ने, मजहब को सिवाय बदनामी के आज तक दिया क्या है? हिंदुस्तान और पाकिस्तान, दोनों एक साथ आज़ाद हुए थे, और देख लो, आज हिंदुस्तान चाँद-सितारों तक जा पहुंचा है और पाकिस्तान अपने दकियानुसी सोच के चलते ज्यों-का-त्यों है। बड़े दुःख की बात है, आज भी पाकिस्तान में वही हुक्मराँ कामयाब है, जो हिंदुस्तान के ख़िलाफ़ अधिक-से-अधिक ज़हर उगल सकता हो। बेटे, पाकिस्तान सिर्फ़ हिंदुस्तान का ही ख़तावार नहीं, उसने अफ़ग़ानों को भी छला है।" कहते-कहते गुलमुहम्मद का चेहरा पाकिस्तान के प्रति घृणा से भर उठा, "बेटा, हिंदुस्तान में ये सब नहीं होता। वहां के मुसलमानों को वो सभी हक़-ओ-हक़ूक़ मिले हुए हैं, जो कि वहां हिंदुओं को हैं। वहां अम्न-चैन है। कश्मीर पर ज़ुल्मों-सितम पाकिस्तान ने ढाया है, हिंदुस्तान ने नहीं। अफ़ग़ान पर भी पाकिस्तान ने ही दहशतगर्द तालिबानों को तख़्तनशीं किया था, और आज अमेरिका से दोस्ती के चलते दोनों (अमेरिका और पाकिस्तान) दहशतगर्दी के ख़िलाफ़ एकजुट हैं! अफ़ग़ानों पर बमबारी कर रहे हैं! क्या दिखावा है? क्या छलावा है? तुम्हारे भाई नज़र मुहम्मद के कातिल हैं ये सब!"

"ताया, मैं सब समझता हूँ, पर क्या करूँ, मज़बूर हूँ!" सलीम के स्वर में फिर वही बेवसी थी, "जेहाद छोड़कर मैं करूँगा भी क्या? वो कुत्ते मुझे पाताल से भी ढूंढ कर मार डालेंगे! अगर उनके हाथों से बच भी गया, तो भूख और बेरोज़गारी मुझे मार डालेगी! आठ बरस का था जब शुराबियों (रशियनों) के गोल-बारूद ने मेरे वालिद की जान लेकर मुझे बेसहारा कर दिया था। तालीम की जगह जेहादियों ने तलवार थमा दी थी। आज जिन हाथों में कंप्यूटर होना चाहिए था, कारतूस हैं! अमेरिका और लादेन की मदद से हमने शुराबियों (रशियनों) के टुकड़े तो कर दिए थे, मगर तब से जो हथियार हाथ में आया, अब कुछ और करने का दिल नहीं करता।"

"या अल्लाह! तू नेकी की राह तो अपना, कोई-न-कोई रास्ता ख़ुद-ब-ख़ुद निकल आएगा।" गुलमुहम्मद ने सलीम को प्यार से समझाया। "जब पाकिस्तान ने अफ़ग़ान के ख़िलाफ़ जंग में अमेरिका की मदद की थी, उस वक्त, मुझे ये रास्ता छोड़ने का ख़्याल आया था, मगर छोड़ नहीं सका! क्योंकि आज भूख ने सारे अफ़ग़ान को झिंझोड़कर रख दिया है। जानवरों का चारा खाकर यहाँ के बाशिन्दे अपनी भूख मिटा रहे हैं। ऐसे में जेहाद की नौकरी से जो चार पैसे हाथ आते हैं, तो बुरा क्या है?" सलीम ने अपनी सफ़ाई पेश की।

"या मेरे मालिक! तू ही इस लड़के को कोई रास्ता दिखला!" गुलमुहम्मद ने बेचैन होकर आकाश की तरफ़ देखा।

"आज के ज़माने में मालिक वही है तायाजान, जिसके पास माल है!" सलीम ने चुटकी बजाई, "और माल उसी कमबख़्त करीमुल्लाह के पास है।"

"तू करीमुल्लाह को गोली मार दे ....! इतना तो कर ही सकता है, मैं समझूँगा तूने मेरे बेटे के हत्यारे को गोली मार दी।" गुलमुहम्मद के स्वर में कठोरता थी।

"सवाल एक करीमुल्लाह के मर जाने का नहीं है ताया! आज इधर एक करीमुल्लाह का जनाज़ा उठेगा, तो कल को उसकी मय्यत पे फ़ातिहा पढ़ने को कोई दूसरा करीमुल्लाह उठ खड़ा होगा! तब कितनों को मारता फिरूँगा मैं?" सलीम ने जैसे चीख़कर अपनी खीज उतारी हो!

"तालिबानों के सफाये के बाद, अब इतना आसान नहीं है, किसी करीमुल्लाह का पनपना। जेहाद के लिए नौजवानों को बहकाना!" गुलमुहम्मद ने अपनी राय व्यक्त की।

"सो तो ठीक है ताया, फिर भी नई सरकार को जमने में कुछ वक़्त तो लगेगा ही! फिर पिछले बीस बरसों में जेहाद के ज़हरीले दरख़्त की जड़ें इतनी गहरी पैठ चुकी हैं कि हमारी पीढ़ी के मिटने तक कुछ न हो सकेगा!"

"क्या तुम्हारा जाना एक-दो महीने के लिए टल नहीं सकता?"

"क्यों?"

"क्या पता, तब तक सूरते-हाल बदल जाएँ?"

"कैसे बदलेगा, सूरते-हाल?"

"जिस तरह पाकिस्तानी और हिंदुस्तानी फौजों का जमावड़ा बॉर्डर पर काफ़ी बढ़ चुका है, हो सकता है, इस बीच जंग ही छिड़ जाए!" गुलमुहम्मद ने बड़ी दूर-अन्देशी से कहा। जिसे सुनकर सलीम की हंसी छूट पड़ी।

"ताया, क्या बच्चों जैसी बात कर रहे हो?" हंसी रोकते हुए सलीम बोला, "ताया दोनों मुल्कों के अख़बारों में, जंग तो एक अरसे से चल रही है। हर बार लगता है कि जंग अब छिड़ी या तब

छिड़ी! मगर पाकिस्तान एक डरपोक मुल्क है। पहले भी तीन-चार दफ़ा हिंदुस्तान से पिट चुका है। इसलिए खुलेआम मौत को ललकारने की हिम्मत उसमे नहीं है। अलबत्ता, चोरी-छिपे जंग करने में उसको मज़ा आता है और वह इसे ज़ारी रखेगा!" सलीम ने पाकिस्तान के दोगलेपन को ज़ाहिर करते हुए कहा, "ताया ख़बरों में रोज़ ही पढ़ते-सुनते हो कि आज इतने दहशतगर्द मारे गए .... आज इतने घुसपैठिये मारे गए.... पर क्या कभी आपने सुना कि पाकिस्तानी सिपाही मारे गए?"

"क्यों मरने लगे वो लोग? जब मारने को तुम जैसे बेवकूफ़ अफ़गानी जो हैं!" गुलमुहम्मद ने तपाक से कहा।

"यही तो...., यही तो मैं कहना चाह रहा था। ताया और आप कह रहे थे कि पाकिस्तान जंग छेड़ेगा...., या खुदा, मेरी तो हंसी नहीं रुक रही है अब तक।" सलीम पुनः ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगा। जिससे गुलमुहम्मद खीज उठा।

"तू मार खायेगा सलीम मेरे हाथों से!" कहते हुए गुलमुहम्मद ने सलीम को हल्की-सी चपत लगाईं।

इस बीच मैगज़ीन के फटे हुए काग़ज़ का एक टुकड़ा उड़कर सलीम के पैरों की तरफ़ आ गिरा। जिसे उसने यूँ ही उठा लिया। उस पर हिंदी में लिखा था 'उग्रवादी ढ़ेर...' बाक़ी आगे-पीछे का सिरा फटा हुआ था।

"ताया, किसी रोज़ हिंदुस्तानी अख़बारों में, मेरे लिए भी लिखा होगा--कश्मीर में घुसपैठ करते हुए, भाड़े का एक और उग्रवादी मारा गया।"

"एक और चपत लगाऊंगा। अगर ऐसी बात की तो!" गुलमुहम्मद ने सलीम का कण मरोड़ते हुए कहा, "वैसे ये हिंदुस्तानी में क्या लिखा है?"

"उग्रवादी ढ़ेर..." सलीम काग़ज़ ताया की ओर बढ़ाते हुए कहा, "मेरी मानों तो आप भी हिंदुस्तानी सीख लो। बड़ी अच्छी ज़ुबान है।"

"अब बुढ़ापे में ये पश्तो (अफ़गानी भाषा) पठान हिंदुस्तानी किताबें पढ़कर आँखें फोड़ेगा क्या?" गुलमुहम्मद हंस पड़ा।

"ताया, आप भी बस कमाल हैं!" सलीम ने हँसते हुए कहा, "ताई आज खाना भी खिलाएगी या रोजा रखना है?" सलीम ने हमीदा से कहा, जो अब तक मूक दर्शक बनी हुई बातें सुन रही थी।

"खाना तो सुबह से ही तैयार है।" हमीदा ने चाय के ख़ाली गिलासों को समेटते हुए कहा।

"अच्छा सलीम बेटे, जंग के दौरान इस बीच तुम रिफ़्यूजी कैम्प भी गए थे न?"

"हाँ, ताया!"

"क्या तुम्हारी मुलाक़ात नाज़नीन से नहीं हुई? आजकल अपने शौहर के साथ वो बेचारी भी...!"

"नाम मत लो उस तवायफ़ का, नफ़रत करता हूँ मैं उससे!"

"तवायफ़! या मेरे मौला!!" गुलमुहम्मद चौंक पड़ा।

"हाँ-हाँ तवायफ़..., जाकर देखो क्वेटा शहर (पाकिस्तान) में, जहाँ सैकड़ों अफ़गानी औरतें जिस्मफ़रोशी कर रही हैं। वह कमबख़्त भी वहीँ है!" एक अजीब-सी घृणा से सलीम का चेहरा भर उठा।

"वो बेचारी तो अपने शौहर के साथ गई थी!" हमीदा भी हैरान और परेशान थी।

"आख़िर क्या वजह रही होगी?" गुलमुहम्मद की आँखों में शून्य तैर रहा था।

तभी गाँव के समीप बानी पीर बाबा की मस्जिद से 'अल्लाह हो अकबर... अल्लाह....' की पाक ध्वनि गूंजी।

"लो नमाज़ का वक़्त हो गया। आज बातों में समय का कुछ पता ही नहीं चला।" गुलमुहम्मद ने अजान की आवाज़ सुनकर कहा।

"चलो ताया, पहले नमाज़ अता कर लें।" सलीम ने कहा और दोनों मुसलमां वहीँ नमाज़ की तैयारी में जुट गए।

०००

"ताई, कश्मीर में तेरे हाथों की बनी रोटियाँ बड़ी याद आएँगी!" खा चुकने के बाद हाथ धोते हुए सलीम ने डकार लेते हुए कहा और तौलिये से हाथ साफ़ करने लगा।

"तू यहीं ठहर जा, ज़िंदगीभर रोटियाँ बना के खिलाऊंगी बेटा!" हमीदा का स्वर भारी हो गया।

"ताई, आज पूरे दो दिन हो गए हैं मुझे! अब चलने का वक़्त आ पहुंचा है। पता नहीं दुबारा आप लोगों की शक्लें देख पाऊंगा या नहीं।" कहते-कहते सलीम का स्वर भारी हो चला था। आँखें नम हो उठीं।

"ओये चुपकर! लगाऊंगा एक, ऐसी बातें नहीं करते!" गुलमुहम्मद ने हल्की-सी चपत लगाते हुए कहा।

"ताया, कश्मीर में तेरे हाथों की मार भी बड़ी याद आएगी!"

"ओये कमबख़्त, अब रुला के छोड़ेगा क्या?" कहते हुए गुलमुहम्मद ने सलीम को सीने से लगा लिया। उसे लगा जैसे नज़र मुहम्मद से गले मिल रहा है।

०००

कश्मीर जाने से पहले ये आख़िरी मुलाक़ात थी सलीम और ताया-ताई के मध्य। अभी दो हफ़्ते पहले की ही तो बात थी ये। इन दो हफ़्तों में सारा परिदृश्य ही बदल गया था। कश्मीर में घुसपैठ करते वक़्त भारतीय जवानों की गोलियों से भाड़े के जो सात उग्रवादी मारे गए थे, अभागा सलीम भी उनमे से एक था। अपनी जान जोखिम में डालकर नूरा, सलीम की लाश को गाँव लाया था।

"जब तक जेहाद रहेगा। सलीम तेरा नाम रहेगा।" वातावरण में उपस्थित जनसमुदाय द्वारा निरन्तर नारे गूंज रहे थे।

"ताया, ये लो सलीम का पर्स।" नूरा ने गुलमुहम्मद की तन्द्रा तोड़ी और वह यादों के मरुस्थल से निकलकर यथार्थ के ठोस धरातल पर आ खड़ा हुआ। दो माह पूर्व नज़र मुहम्मद की लाश भी इसी बरामदे में रखी थी और पृष्ठभूमि पर जेहादियों द्वारा ऐसे ही नारे लगाए जा रहे थे।

आख़िरकार गुलमुहम्मद ने बेइरादा पर्स खोला तो पाया -- उसमे नाज़नीन का मुस्कुराता हुआ फोटो रखा था। तभी किसी ने लाश के चेहरे से कफ़न हटाया तो गुलमुहम्मद की अंतर आत्मा चीत्कार कर उठी, "हमारी नस्लों को जेहाद का घुन खा गया हमीदा....!!!"

●●●

महावीर उत्तरांचली का अन्य साहित्य:—

१. *रामभक्त शिव* (संक्षिप्त जीवनी व दोहे)
२. *इक्यावन रोमांटिक ग़ज़लें*
३. *इक्यावन उत्कृष्ट ग़ज़लें*
४. *लोकप्रिय कहानियाँ*
५. *उत्तरांचली के आलेख व संस्मरण*

उत्तरांचली साहित्य संस्थान की अन्य पुस्तकें:—

१. *कालजयी दोहे* (सम्पादक: सुरंजन; हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों के दोहे।)
२. *तीन पीढ़ियाँ: तीन कथाकार* (सम्पादक: सुरंजन; प्रेमचंद/मोहन राकेश व महावीर उत्तरांचली की कहानियाँ।)

महावीर उत्तरांचली शा'इर

जन्म : 24 जुलाई 1971, दिल्ली में।

शिक्षा : कला स्नातक, दिल्ली विश्वविद्यालय से।

विद्या : गद्य–पद्य की समस्त विद्याओं में लेखन।

प्रकाशित :
- कविताकोश, गद्यकोश, प्रतिलिपि, रेख़्ता, जखीरा, साहित्यपीढ़िया, स्वर्गविभा, रचनाकार, जय–विजय, हिन्दी समय, अमर उजाला, स्टोरी मिर्रोर, अनुभूति, साहित्य शिल्पी, साहित्यसुधा आदि हिन्दी–उर्दू की महत्वपूर्ण वेबसाइटस पर रचनाएँ निरन्तर प्रकाशित।
- छोटी–बड़ी साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं में रचनाएँ निरन्तर प्रकाशित व महत्वपूर्ण संकलनों–विशेषांकों में रचनाएँ।
- दर्जनभर पुस्तकें प्रकाशित। अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

सम्प्रति : निदेशक, उत्तरांचली साहित्य संस्थान, दिल्ली 10096 कथा संसार में उपसम्पादक, ग़ाज़ियाबाद व 'बुलन्दप्रभा' में साहित्य सहभागी, बुलन्दशहर

ई–मेल : m.uttranchali@gmail.com / चलभाष : 8178871097

सोबन सिंह चित्रकार

(जन्म 6 फ़रवरी 1978, नई दिल्ली) द्वारा आवरण चित्र बनाया गया।

फाइन आर्टस में डिप्लोमा प्राप्त हैं। शिव सिंह जी के तृतीय पुत्र हैं। कवि महावीर उत्तरांचली के छोटे भाई।

चलभाष : 9654208881